आरानामा

विमल कुमार

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

आरानामा

विमल कुमार

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
नई दिल्ली

श्रृंखला संपादक :
डॉ. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
15ए, सेक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
द्वारा प्रकाशित

मूल्य : ₹ 200/-

संस्करण : 2019

ISBN : 978-81-937829-6-5

© सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
आवरण : वीर कुंवर सिंह संग्रहालय, आरा (बिहार, भारत)

इस प्रकाशन में प्रस्तुत मत या विचार मात्र लेखक के हैं और वे सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र, नई दिल्ली के विचार या मत को उद्घाटित करें, यह आवश्यक नहीं।

अल्पज्ञात शहर व स्थानीयता

भारत के अल्पज्ञात शहरों, लघु शहरों, स्थानीय स्थलों की सांस्कृतिक परिस्थितियों व समकालीन स्थितियों में उनके विकास तथा संस्कृति की भूमिका के बारे में जानना बहुत रोचक है। यह इसलिए भी आकर्षक है कि कोई भी संस्कृति स्थानीय आर्थिक व सामाजिक विकास का सेतु होती है। केवल अंधाधुंध विकास की शर्त पर संस्कृति का संरक्षण नहीं किया जा सकता क्योंकि संस्कृति का एक मानवीय परिप्रेक्ष्य है।

स्थानीय स्थलों पर विचार करते हुए सांस्कृतिक लोक, उसके सहज जीवन, भूगोल, इतिहास, परंपरा के साथ प्रामाणिकता, रचनात्मकता व किवदंती आदि भी ध्यान में रखे जाने चाहिएँ। सामाजिक गतिशीलता, सामुदायिक व्यवहार्यता, राजनीतिक व संस्थागत प्रक्रिया भी उसके प्रति समझ के आधार बनते हैं। वहाँ के विश्वास, प्राकृतिक संपदा, धरोहर, त्यौहार, सहजता, आदि कथाएँ, संचार प्रणाली आदि उनकी पारिस्थितिकी को रचते हैं। इतिहास को समझना भी संस्कृति का महत्वपूर्ण कर्म है। किसी स्थान या गाँव या शहर को उसे उसकी परंपरा में जानना-समझना है। वहाँ का रहन-सहन, भोजन, स्मृतियाँ, दर्शनीय स्मारक, दैनंदिन ज्ञान, साझा जीवन के अनुभव, सूचनाएँ आदि किसी स्थानीयता को पुष्ट करते हैं। स्थानीय संस्कृति हमारे वातावरण, स्थानीय परिदृश्य को प्रतिबिंबित करती है।

सांस्कृतिक पक्ष सांस्कृतिक संवेदनशीलता और जागरूकता तक फैला हुआ है। सांस्कृतिक विविधता स्थानीयता को पुष्ट करती है। स्थानीयकरण के माध्यम से भाषा को जानने की आवश्यकता होती है। स्थानीय संस्कृति प्रकृति के साथ जुड़ी हुई है। वहाँ प्रकृति का मौन, सुंदरता व महत्त्व का अनुभव ज्ञात होता है।

स्थानीय संस्कृति स्थानीय रचनात्मकता को व्यक्त करने, व्यक्तिगत पहचान बनाने और समुदाय को विकसित करने तथा संरक्षित करने का एक साधन भी है। स्थानीयता की संस्कृति विरासत की बेहतर समझ सहित शिक्षा के अवसरों को व्यापक बनाती है। संस्कृतियों की विविधता के लिए मान्यता व सम्मान भी आपसी समझ, संवाद व शांति के लिए स्थितियाँ बनाता है।

मुझे 'शहरों की अनकही दास्ताँ' शृंखला में 'आरानामा' के प्रकाशन पर प्रसन्नता हो रही है। आशा है, स्थानीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से पाठक अवगत हो पाएँगे।

डॉ. हेमलता एस. मोहन
अध्यक्ष, सीसीआरटी

'शहरों की अनकही दास्ताँ' पुस्तक-शृंखला के बारे में

भारत राष्ट्रीयता के साथ स्थानीय संस्कृतियों से संपन्न देश है। विभिन्न क्षेत्रों, नगरों की विशेषताएँ इस देश को महत्त्वपूर्ण बनाती हैं। ये मात्र भौगोलिकता तक सीमित नहीं। इनमें रुचियों के विभिन्न पहलू देखे जा सकते हैं, जैसे वहाँ की वास्तुकला, धर्म, लोकगीत, वेशभूषा, भाषा, प्रकृति, पर्यावरण आदि। कई बार ये आपस में जुड़ते हैं तो कई बार सीमाओं का अतिक्रमण भी करते हैं। स्थानीयता के बावजूद उनमें ऐसे तत्त्व होते हैं जो भारतीयता के सहज आधार बनते हैं। यदि गाँव सांस्कृतिक एकरूपता के प्रतीक हैं तो शहर सांस्कृतिक विविधता के प्रतीक। ये एक तरह से हमारी ऐतिहासिक/सांस्कृतिक धरोहर हैं।

संस्कृति मंत्रालय व सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र की संयुक्त अवधारणात्मक फलश्रुति हैं - इस शृंखला के तहत विभिन्न लघु नगरों/नगरों पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकें। हमने पाया कि इन लघु नगरों/कस्बों/नगरों की श्रेष्ठ सांस्कृतिक विरासत को पुस्तक-वैचारिकी के रूप में सबके सामने तथ्यपरक ढंग से प्रस्तुत किया जाए ताकि वहाँ का सांस्कृतिक/शैक्षिक व अन्य विविध वैभव उजागर हो सके। इस माध्यम से न केवल उस लघु नगर/नगर के लोग अपनी सांस्कृतिक आभा से परिचित हो सकेंगे वरन् वे लोग भी जो ठीक से उन शहरों की संस्कृतियों से रूबरू नहीं हो पाए हैं उनको जान सकेंगे।

आज के समय में तीव्र सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन शहरी जीवन की विशेषता बनते गए हैं तथा पारंपरिक व शाश्वत महत्त्व पृष्ठभूमि में चले गए हैं। हमारी कोशिश है कि इन दोनों धाराओं को इन पुस्तकों में समाहित करते हुए हम परिपूर्णता का प्रयत्न करें। शहरी जीवन के लाभ ने मानदण्डों, विचारसरणियों और व्यवहार प्रतिरूपों के संबंध में परिवर्तन किए हैं किंतु पारंपरिक प्रसंगों, लोकगीतों, स्थानीय जीवन की प्रत्याशाओं के बगैर इनको नए रूप में पहचाना नहीं जा सकता। कई लघु नगर/नगर/वृहत् ग्राम भारत की आज़ादी के आंदोलन की पृष्ठभूमि में रहे हैं तथा कई कलाओं, संस्कृतियों को विन्यस्त करने की दिशा में अग्रणी। कई ने स्थानीयता के अलावा भारतीय जीवन के संस्कार निर्मित किए हैं तो कइयों ने हमारी आज की दृष्टियाँ निर्मित की हैं।

इन विशिष्ट लघु नगरों/नगरों पर आधारित पुस्तक-शृंखला में 'आरानामा' पुस्तक आपको सौंपते हुए मुझे हर्ष है। मुझे आशा ही नहीं विश्वास भी है कि यह पुस्तक सिर्फ़ शहर की गाथा न होकर संस्कृति, जिजीविषा, नवाचार, परंपरा, जिज्ञासा, समझ व नए समय को दर्शाती जीवन-दृष्टि की वाहक के रूप में पाठकों के बीच आदर का विषय बनेगी।

ऋषि कुमार वशिष्ठ
निदेशक, सीसीआरटी

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	भूमिका	10
2.	हर शहर में एक इतिहास छिपा है	13
3.	पुस्तकों में आरा शहर	16
4.	दुनिया के शहरों में कहां है अपना शहर	18
5.	स्मृतियों में कैद शहर	22
6.	शाहाबाद इतिहास के आइने में	26
7.	आरा का नामकरण	29
8.	विलियम फोर्ट कॉलेज और सदल मिश्र	33
9.	महानायक वीर कुंवर सिंह	39
10.	महात्मा गांधी जब आरा आए	44
11.	1942 का आंदोलन और आरा	47
12.	नवजागरण का केंद्र	50
13.	शिक्षा की बुनियाद	52
14.	आरा नागरी प्रचारिणी सभा	56
15.	राजेंद्र बाबू और आरा शहर	60
16.	नाटकों का शहर	64
17.	बाल हिंदी पुस्तकालय	68
18.	क्या गालिब आरा आए थे	73
19.	शहर का अतीत	81
20.	चौक और गलियों का शहर	84
21.	शहर का बदलता चेहरा	87
22.	शहर का जनजीवन	90
23.	स्वास्थ्य सेवाओं का बुरा हाल	94
24.	आरा में पत्रकारिता	97
25.	शहर के कला पुरुष	101
26.	शहर के भूले बिसरे लोग	105
27.	आरा की महान विभूतियाँ	111
28	आरा : दर्शनीय स्थल	129
29.	परदा गर्ल्स हाईस्कूल	133
30.	आरा : वर्तमान और भविष्य	136
31.	परिशिष्ट – संदर्भ ग्रंथ	139

केवल तुम्हारा शहर नहीं हूं मैं

—विमल कुमार

केवल तुम्हारा शहर नहीं हूं मैं
अपने समय का एक इतिहास भी हूं मैं
कहीं ऊंचे मकान तो कहीं फीकी दुकान
कहीं इतना शोर तो कहीं मधुर—सी तान
कहीं टूटी हुई गलियां तो कहीं सड़कों पर मूर्तियां
आज़ादी के बाद एक अजीब किस्म का विकास हूं मैं

मुझ से मेरे मुहल्ले का हाल न पूछो
सूख गए सब ताल न पूछो
जो कर दे मुझको परेशान
कोई ऐसा सवाल न पूछो

मैं एक शहर नहीं हूं तुम्हारा
दुख में लिपटी हुई
तुम्हारी खुशियों का आकाश हूं मैं
जितना जल्द हो किसी कागज पर मुझे उतारो
जो मिला एक जीवन उसका उच्छ्वास हूं मैं

कितने जख्मों को अपने भीतर समाए
कितना कुछ अनकहा बिना बताए
कोई एक तिलिस्म मन में छिपाए
तुम्हारी स्मृतियों में हरदम पास हूं मैं
मैं केवल तुम्हारा शहर नहीं हूं
अपने समय का एक इतिहास भी हूं मैं

एक पुराने किले के किस्सों में
कई ढहती इमारतों के हिस्सों में
उग आई जंगली घास हूं मैं
तुमको यह खबर न हो कि तुम्हारी उम्मीद हूं

वक्त को बदलने की एक अजीब जिद हूं
क्या तुम्हें मालूम कि तुम्हारा एक ख्वाब हूं मैं
कई सुलगते सवालों का नामुमकिन जवाब हूं मैं
केवल तुम्हारा शहर नहीं हूं मैं
अपने समय का एक इतिहास भी हूं मैं

तुमको देखा आगे रोज बढ़ते हुए
चांद को पकड़ने आसमान पर चढ़ते हुए
कुछ पाने के लिए लोगों को धकेलते हुए
एक नया खेल रोज मैदान में खेलते हुए

मेरा दुख दर्द जानो तो तुम्हारा विश्वास हूं मैं
केवल तुम्हारा शहर नहीं हूं मैं
अपने समय का इतिहास भी हूं मैं

कोई एक रंग हो तो तुमको बताऊं
कोई गम नहीं जो मैं तुमसे छिपाऊं
जब भी लौटकर तुम कहीं से आओगे
मेरी ही बांहों में तुम छिप जाओगे

मेरा अतीत भले अभिलेखागार में है
मेरा वर्तमान तो तुम्हारे साथ में है
पर मेरा भविष्य जो तुम्हारे हाथ में है
मैं केवल एक शहर नहीं हूं
अपने समय का एक इतिहास भी हूं मैं
तुम्हारी धड़कनों में छिपी हुई
जिंदगी की सांस हूं मैं
इस अंधेरी रात में एक नई रोशनी की तलाश हूं मैं

मैं केवल एक शहर नहीं हूं
अपने समय का इतिहास भी हूं मैं

भूमिका

किसी शहर पर किताब लिखना एक कविता या किसी उपन्यास पर किताब लिखने से अधिक कठिन और चुनौतियों से भरा है, खासकर जब आपका नाता उस शहर से टूट गया हो या आपने उस शहर को पूरी तरह से जीया न हो।

आरा शहर पर किताब लिखने का प्रस्ताव, जब संस्कृति मंत्रालय के संयुक्त सचिव, हिंदी के चर्चित कवि और संगीत के गहरे जानकार पंकज राग ने मुझे टेलीफ़ोन पर दिया तो मैं उनके प्रस्ताव को चाहकर भी ठुकरा न सका। इसका एक कारण तो यह है कि आरा मेरी स्मृतियों का शहर है। वहां मैंने बचपन और कॉलेज के दिनों की कई शामें गुज़ारी हैं। यद्यपि आरा शहर में मेरा बचपन नहीं बीता लेकिन पटना से अक्सर मैं वहां आता–जाता रहा। भोजपुर के इलाके का रहने वाला हूं तो ज़ाहिर है *आरा* से एक विशेष रिश्ता मेरा रहा है। इस रिश्ते की नींव इसलिए मज़बूत रही कि मेरे निकट के कई रिश्तेदार वहां रहे और मैंने कई पारिवारिक मित्र भी बनाए। इस कारण शादी–बारात के अतिरिक्त अन्य प्रयोजनों में भी वहां आना–जाना रहा। बाद में आरा के कई लेखक मेरे गहरे मित्र बन गए। शायद यही कारण था कि पंकज राग का यह प्रस्ताव मैंने फ़ौरन स्वीकार कर लिया। लेकिन बाद में मुझे लगा कि वाकई यह एक बड़ी चुनौती अपने सर पर मैंने ले ली है क्योंकि किसी शहर पर कोई किताब लिखना उतना आसान काम नहीं है। यह शहर मेरी स्मृतियों में गहरे धंसा रहा है। यद्यपि इस शहर के बारे में मुझे उतनी जानकारी नहीं थी जितनी जानकारियां इस किताब को लिखने के दौरान मिलीं। चूंकि एक समय–सीमा के भीतर यह एक किताब लिखनी थी, इसलिए मैं चाहकर भी बहुत सारी जानकारियों को एकत्र नहीं कर पाया और जितनी जानकारियां मिलीं, उन्हें पूरी तरह यहां उड़ेल भी नहीं पाया क्योंकि पुस्तक के पृष्ठों की भी एक सीमा थी।

दरअसल यह किताब संस्कृति मंत्रालय की एक योजना के तहत लिखी गई जिसका मकसद आम नागरिक को एक शहर के बारे में एक रूपरेखा देना है ताकि वह इस शहर के इतिहास, मिजाज और रंग की एक झलक देख सके।

यह किताब किसी शोध परियोजना के तहत नहीं लिखी जानी थी, इसलिए मैंने इस पुस्तक को शोधपरक बनाने की भी कोशिश नहीं की और न ही यह किताब इतिहास ग्रंथों की तरह लिखी जानी थी। वैसे भी मैं कोई इतिहासकार नहीं हूं। इतिहास का विद्यार्थी ज़रूर रहा हूं पर इतिहासपरक पुस्तक लिखने के लिए गहन शोध एवं विपुल समय की ज़रूरत होती है। यह पुस्तक छह महीने के भीतर लिखी जानी थी लेकिन बाद में सीसीआरटी ने कुछ और समय बढ़ा दिया। इसलिए थोड़ा अतिरिक्त समय मिल गया।

अपने दैनंदिन जीवन, विशेषकर महानगर और पत्रकारिता की व्यस्तता के बीच समय निकालना अत्यंत कठिन कार्य था फिर भी जितना समय निकाल पाया, उसमें यह किताब लिखने की मैंने भरसक कोशिश की। मुझे मालूम है कि यह किताब मेरी ही अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर पाई है, ज़ाहिर है पाठकों की उम्मीदों पर भी खरी नहीं उतर पाएगी लेकिन मैंने यह भरसक प्रयास किया है कि इस पुस्तक को पाठकों के लिए पठनीय बनाया जाए। चूंकि इस पुस्तक के लिए आयोजित बैठक में श्री पंकज राग ने मुझे यह स्वतंत्रता दे दी थी कि इस पुस्तक को हम किसी भी रूप में लिख सकते हैं। इसका कोई बना–बनाया ढांचा नहीं होगा। इसलिए मैंने भी इस पुस्तक को एक निर्धारित ढांचे में नहीं लिखा। इसमें शहर के साथ मेरे जुड़ाव, मेरी स्मृतियां और सूक्ष्म अवलोकन के अतिरिक्त एक संक्षिप्त इतिहास है। इस शहर के रंग–ओ–मिज़ाज को पकड़ने की कोशिश मैंने की है। किताब लिखने के लिए आरा शहर की दो यात्राएं मेरे लिए इस माने में अर्थपूर्ण रहीं कि मैंने इन यात्राओं में ही शहर का पुनः आविष्कार किया। मुझे लगता है कि अगर आरा शहर की और यात्राएं करूं तो इस शहर के कई रूप, रंग तथा खुशबू से परिचित हो जाऊँगा! मेरी इन यात्राओं की भी एक सीमा थी। इसलिए मैं चाहकर भी शहर की परत–दर–परत छिपी कहानी को उजागर नहीं कर सका। फिर भी इस पुस्तक को लिखने में कई लोगों ने मेरी बहुत मदद की, जिनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूं। दरअसल मैंने आरा शहर पर किताब लिखने का प्रस्ताव ही इसलिए स्वीकार किया क्योंकि वहां कई परिचित मित्र, लेखक और सगे–संबंधी हैं। कई लोग तो पुस्तक लिखने के दौरान मेरे नए मित्र बने।

अगर युवा कहानी–समीक्षक एवं सामाजिक कार्यकर्ता सुधीर सुमन न होते तो यह पुस्तक लिखी ही नहीं जाती। उन्होंने अपनी ओर से मेरी भरसक मदद की, जिसे मैं कभी भूल नहीं सकता। चर्चित कहानीकार भाई अनंत कुमार सिंह, अरविंद कुमार, बाल पुस्तकालय के विजय सिंह, पत्रकार शमशाद प्रेम और मनीष ने मेरी बहुत मदद की। मेरे अग्रज मित्र नीरज सिंह, जितेंद्र जी

और रामनिहाल गुंजन जिन्हें मैं कॉलेज के दिनों से उनके लेखों के ज़रिए जानता रहा, ने मुझे कई जानकारियां दीं। श्याम मोहन अस्थाना की बेटी और कथक गुरु बक्शी विश्वास ने भी मुझे कई प्रकार की सूचनाएं दीं। उनका विशेष आभारी हूं। मेरी मामी ने मुझे परदा स्कूल के बारे में बताया जो मेरे लिए आश्चर्य से भरा था। जैन सिद्धांत भवन के प्रभारी ने भी कई अनमोल जानकारियां दीं। इसके अलावा सुशील भाई ने भी दुर्लभ सामग्री दी। वे मेरे बड़े बाबूजी एवं स्वर्गीय अवध बिहारी लाल के करीबी निकले जिन्होंने डॉ. लक्ष्मीनारायण की जेपी पर पुस्तक लिखने के कुछ दिन बाद ही जेपी की जीवनी लिखी थी। वे 1942 के आंदोलन में स्वतंत्रता सेनानी थे और आरा शहर के मॉडल स्कूल के प्राचार्य भी। जेपी आंदोलन में सुशील जी अवध बिहारी जी के साथ जेल में थे।

इसके अलावा चर्चित नाटककार राजेश कुमार, अशोक मानव ने भी रंगमंच के बारे में काफ़ी जानकारियां साझा कीं।

पुस्तक से संबंधित सामग्री जुटाने के क्रम में मैं कई और लोगों से मिला जिनमें रणजीत बहादुर माथुर जी का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने मुझे बाबू शिवनंदन सहाय का घर भी दिखाया। उनसे कई पुरानी जानकारियां मिलीं। युवा साथी आशुतोष ने मेरी मदद की लेकिन जिस तरह की मदद की उम्मीद उनसे थी बार–बार उलाहने के बावजूद वे नहीं दे पाए। चर्चित पत्रकार श्रीकांत और नवेंदु से भी कई बार आग्रह किया कि वे अपने अनुभव से हमें अवगत कराएँ क्योंकि उन दोनों का बचपन आरा में ही बीता। मेरे बहनोई ने भी मेरी काफ़ी मदद की और कई तरह की दुर्लभ सामग्रियां भी दीं।

आरा शहर के बारे में तीन अवकाशप्राप्त शिक्षकों ने मुझे ऐसी जानकारी दी जो अन्यत्र नहीं मिल सकती थी।

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नेहरू संग्रहालय तथा खुदाबख्श खां लाइब्रेरी से भी मुझे कुछ जानकारियां मिलीं लेकिन जिस तरह की जानकारियां मैं चाहता था, वह पुस्तकालयों में नहीं मिलीं क्योंकि आरा शहर पर कोई पुस्तक हिंदी या अंग्रेजी में नहीं छपी है, सिवाय सकलनारायण शर्मा की एक पुस्तिका के जो 1902 के आसपास छपी है।

छायाचित्र श्री संजय श्रीवास्तव के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।

आरा शहर पर पुस्तक लिखना दुष्कर कार्य था पर किसी तरह यह संभव हो पाया जिसमें एक आम पाठक को इस शहर का एक जायजा मिल सके।

& foey dekj

हर शहर में एक इतिहास छिपा है

दुनिया का कोई ऐसा शहर नहीं है जिसमें एक दिलचस्प इतिहास न छिपा हो। हर शहर की अपनी एक कहानी है। वह एक न खत्म होने वाले उपन्यास की तरह भी है। कोई–कोई शहर तो एक महाकाव्य की तरह भी होता है। सच पूछा जाए तो हर शहर एक खास तरह की सभ्यता और संस्कृति की कहानी कहता है। कोई भी शहर अपने बाशिंदों से ही बनता है पर कई बार शहर बनते और उजड़ते भी हैं। वे अपना प्राचीन स्वरूप त्यागकर आधुनिक स्वरूप भी अपना लेते हैं। दरअसल कोई शहर ठहरा हुआ नहीं होता। कुछ शहरों की गति तेज़ नहीं होती। वे मुक्त और शांत किस्म के होते हैं पर उनमें परिवर्तन और बदलाव निरंतर होते रहते हैं। वह अपने समय से लगातार प्रभावित होते रहते हैं। कोई भी शहर अपने समय से अछूता नहीं रह सकता है। शहर का जन्म भी एक खास तरह की भौगोलिक, राजनीतिक और सामाजिक स्थिति में ही होता है। दरअसल शहर अपने समय की सभ्यता की एक पहचान होते हैं। सभ्यता के निर्माण में शहरों की ऐतिहासिक भूमिका रही है। बल्कि शहर नागर सभ्यता के मानक और प्रतिमान भी बने हैं।

अक्सर यह देखा गया है कि शहरों का जन्म नदियों के किनारे हुआ है। नदियां महान सभ्यताओं की वाहक रही हैं। नदियों के किनारे मानव–जीवन पुष्पित और पल्लवित होता रहा है। नदियों के पानी में जीवन की कहानी छिपी है। उपजाऊ मिट्टी और किनारों ने सभ्यता को आगे बढ़ाने में मदद की है। बिना किसी आर्थिक या सांस्कृतिक गतिविधियों के शहर का निर्माण नहीं होता है। जिस शहर का अर्थशास्त्र मज़बूत रहा है वह अधिक संपन्न तथा समृद्ध रहा है। जनता की संपन्नता तथा समृद्धि से ही शहर की समृद्धि एवं संपन्नता निर्धारित हुई है। अगर शहर की जनता दुखी है और वह कष्ट में है तो शहर के चेहरे पर भी साफ–साफ शिकन दिखाई देती है। तब वह एक उदास शहर बन जाता है। वह शहर भी कराहने लगता है। उसकी आवाज़ में दर्द उभरता है। अगर शहर की जनता खुशहाल है तो शहर के चेहरे पर भी एक चमक–एक रोशनी दिखाई देती है और तब वह शहर एक सुंदर ख़्वाब देखने लगता है।

यह किसी एक शहर के साथ नहीं, बल्कि दुनिया के सारे शहरों के साथ है। शहर एक तहज़ीब और तमद्दुन को साथ ले आते हैं। चाहे वह विश्व के सबसे पुराने शहर रोम, वाराणसी, बेबीलोन, एथेंस, पेरिस, लंदन, पाटलिपुत्र, उज्जैन, दिल्ली, कोलकाता, आगरा, कुरुक्षेत्र ही क्यों न हो। जो शहर जितना ही पुराना है, उसके पास अनगिनत किस्से हैं और उसका इतिहास भी अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है।

आज हम स्मार्ट सिटी के दौर में पहुंच गए हैं। जहां देश के कई शहरों को स्मार्ट सिटी के रूप में विकसित किया जा रहा है वहीं कई शहरों की हालत खस्ता है। वे दम तोड़ रहे हैं। वहां बहुत गरीबी, गंदगी और अशिक्षा है, चिकित्सा व्यवस्था का इतना अभाव है, वहां के लोग किसी तरह अपनी ज़िंदगी बसर कर रहे हैं। हालांकि देश के आर्थिक विकास से कई शहरों का विकास भी संभव हुआ है। अब छोटे शहरों में भी शॉपिंग माल और बड़ी–बड़ी कंपनियों के शो–रूम खुलने लगे हैं, पर क्या यह वास्तविक विकास है क्योंकि शॉपिंग माल के ठीक सामने गंदगी और गरीबी देखी जा सकती है। एक शहर को केवल प्रशासन ही ठीक नहीं कर सकता है। उसमें सभी नागरिकों की मदद और सहायता अपेक्षित है। शहर को साफ़–सुथरा बनाने की हमारी भी ज़िम्मेदारी है। चूंकि अधिकांश शहर बिना किसी योजना के बने हैं, स्थानीय प्रशासन की विफलता से, नियमों के उल्लंघन और अतिक्रमण से भी शहरों में एक तरह की अव्यवस्था देखी जा सकती है। कई शहरों का बेतरतीब विकास भी हुआ है। एक शहर में ही एक हिस्सा सुंदर है तो दूसरा हिस्सा एकदम कुरूप। दरअसल ये सभी शहर असंतुलित और गैर–योजनाबद्ध तरीके के विकास और सुशासन के अभाव को भी परिलक्षित करते हैं, फिर भी कई शहरों के सौंदर्य ने नागरिकों को अभिभूत भी किया है। शहर हमें आमंत्रित भी करते हैं। वे अपने पास बुलाते भी हैं। उनकी ज़िंदादिली, मेहमाननवाज़ी तथा उनकी आत्मीयता हमें खींचती भी है। कुछ लोग अपने शहर को किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहते। उनसे उनका एक ऐसा रिश्ता बन जाता है कि उनकी हर सांस शहर की धड़कनों से बंध जाती है। कुछ लोग आजीविका तथा शिक्षा के लिए शहर छोड़कर किसी दूसरे शहर में बस जाते हैं पर अपने शहर की याद उन्हें टीसती रहती है और वे कई बार अपने शहर को लेकर भावुक भी हो जाते हैं। वे दोबारा लौटना भी चाहते हैं लेकिन उन्हें जीवन की मजबूरियां उन्हें ऐसा करने से रोकती हैं।

कुछ शहर अपनी ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण उजड़ने लगते हैं और धीरे–धीरे मरने लगते हैं। शहर की मौत इतिहास की मौत होती है और यह मानव सभ्यता की अत्यंत दुखद घटना होती है। वह एक सभ्यता तथा संस्कृति की भी मौत होती हैं लेकिन किसी भी शहर का जन्म और मौत किसी व्यक्ति के हाथ में नहीं होता।

समय ही इतिहास बनाता है, वही शहर को जन्म और मृत्यु भी देता है परंतु कुछ शहर बार–बार अपना रंग एवं रूप बदलकर जीवित रहते हैं। ऐसे शहर ही हमें ज़िंदगी जीने की प्रेरणा भी देते हैं। यही कारण है कि हम कई बार शहरों को देखने के लिए सुदूर देशों की भी यात्रा करते हैं पर किसी शहर को केवल पर्यटक की तरह नहीं देखा जा सकता। हमें शहर की धड़कनों को भी महसूस करना चाहिए। उससे एक तादात्म्य भी स्थापित करना चाहिए। तभी हम शहर से कुछ सीख पाते हैं। अगर आप शहर को जी–जान से प्यार करते हैं तो शहर भी आपको प्यार करता है, अन्यथा हम अपनी पूरी जिंदगी बेगाने की तरह शहर में गुजार देते हैं और तब लगता है कि हम शहर में रहकर भी शहर के नहीं हुए। यह विडंबना महानगरों की अधिक है, छोटे शहरों में मनुष्य उससे एक रिश्ता तो कायम कर ही लेता है। अगर आपका रिश्ता किसी शहर से एक बार बन गया तो वह आजीवन टूटता नहीं है। फिर शहर आपकी सांस में बस जाता है।

पुस्तकों में आरा शहर

जब मैंने आरा शहर पर किताब लिखने के लिए पुस्तकालयों की छानबीन शुरू की तो मुझे बहुत निराशा हुई। मुझे आरा शहर पर एक भी किताब नहीं मिली। शाहाबाद जिले पर पहली किताब फ्रांसिस बुकानिन की हाथ लगी जो 1812–13 की थी। इसके बाद 1857 पर जेम्स हॉल की पुस्तक टू *मंथ्स इन आरा इन 1857* हाथ लगी। ग्रामीण विकास मंत्रालय ने बिहार के कई जिलों में भूमि सुधार पर रिपोर्ट प्रकाशित की है जिसमें आरा जिले के भूमि सुधार का भी ज़िक्र है। इसके अलावा शाहाबाद जिले का गजेटियर भी हाथ लगा और कुछ रिपोर्ट भी। लेकिन जिस तरह की किताब मैं आप पाठकों के लिए लिखना चाहता था, वह किताब नहीं मिली। जबकि दिल्ली से जुड़ी 3186 किताबें डेल नेट पर उपलब्ध हैं। इसी तरह कोलकाता पर 7311, आगरा पर 2603, मुंबई पर 1581, वाराणसी पर 927, बनारस शीर्षक से 877 तथा काशी शीर्षक से 476 एवं बाम्बे पर 12,512 पुस्तकें सूची में मिलीं। इससे ज़ाहिर होता है कि जिन शहरों के बारे में पूरी दुनिया को दिलचस्पी है, उनके बारे में तो किताबें मिल जाती हैं लेकिन छोटे शहरों तथा कस्बों पर किताबें नहीं मिल पाती हैं। एक तो भारत में इतिहास लेखन पर शुरू से ध्यान नहीं दिया गया और साथ ही भारत में इतिहास लेखन में स्थानीयता को भी पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया गया। सबल्टर्न इतिहासकारों ने अब इस ओर ध्यान देना शुरू किया है। शहर से जुड़े रहे, बड़े औद्योगिक एवं धार्मिक तथा सांस्कृतिक केन्द्रों के बारे में दुनिया के इतिहासकारों ने ध्यान दिया है लेकिन कस्बों तथा छोटे शहरों के बारे में उतना ध्यान नहीं दिया है। डेलनेट की सूची में लंदन पर 6014, मिस्र पर 5385, रोम पर 3233, पेरिस पर 3094 तथा मास्को पर 1708 पुस्तकें हैं। जाहिर है इन शहरों पर भारत के शहरों से भी अधिक किताबें उपलब्ध हैं। भारत के शहरों पर जो किताबें लिखी गई हैं, उनमें अधिकतर विदेशी लेखकों ने लिखी हैं। भारतीय लेखकों ने भी अंग्रेज़ी में ही लिखना पसंद किया हैं। इस लिहाज़ से हिंदी भाषा में शहरों पर लिखी किताबों का नितांत अभाव है। दिल्ली पर महेश्वर दयाल और निर्मला जैन ने एक किताब लिखी है। लेकिन मुझे नहीं मालूम कि अन्य शहरों पर किसी महत्त्वपूर्ण लेखक या इतिहासकार ने हिंदी में कोई किताब लिखी है।

आरा जाने पर बाल पुस्तकालय के प्रभारी विजय सिंह ने मुझे बताया कि सकल नारायण शर्मा ने 1902 में *आरा पुरातत्व नामक* पुस्तक लिखी थी। यह पुस्तक आरा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है जो बांकीपुर पटना के खड़ग विकास प्रेस से मुद्रित है। बड़े टाइप में मात्र 40 पेज की पुस्तक दरअसल एक पुस्तिका की तरह है। जब यह पुस्तिका हाथ लगी तो देखा कि उस पर सकल नारायण शर्मा की जगह सकल नारायण पाण्डेय लिखा है। तब मेरे मन में यह सवाल उठा कि क्या यह सकल नारायण पाण्डेय कोई और व्यक्ति हैं क्योंकि हिंदी के यशस्वी लेखक शिवपूजन सहाय ने सकल नारायण शर्मा पर एक संस्मरण लिखा है जो आरा निवासी थे और *शिक्षा* नामक पत्रिका के संपादक भी। उसमें से ही होली में सभ्यता का नाश नामक पहला लेख शिवपूजनजी का छपा था। पुस्तक पर सकल नारायण पाण्डेय के परिचय में मंत्री नागरी प्रचारिणी सभा और प्रणेता *शिक्षा* संपादक भी लिखा है। इससे पता चलता है कि सकल नारायण शर्मा ने ही सकल नारायण पाण्डेय नाम से यह पुस्तिका लिखी थी। इस किताब का प्रकाशन काल 1907 का है लेकिन इसकी भूमिका में सकल नारायण पाण्डेय ने एक अप्रैल 1902 की तारीख डाली हुई है।

आरा स्टेशन

दुनिया के शहरों में कहां है अपना शहर

जब हम अपने मुल्क के शहरों की बात करते हैं तो अनायास हमें दुनिया के वे शहर भी याद आ जाते हैं जो अपनी ऐतिहासिकता, समृद्धि, विकास और सौंदर्य के कारण अक्सर हमारा ध्यान खींच लेते हैं। हम उन्हें एक आदर्श शहर के रूप में देखते हैं लेकिन इससे हमारा अपना शहर कम महत्त्वपूर्ण नहीं हो जाता, कम सुंदर और जीवंत नहीं हो जाता। हर शहर की अपनी एक खासियत होती है। उसकी एक प्रकृति होती है। उस शहर को वहां के इतिहास, समय और राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक अवस्था के मद्देनज़र ही देखा जा सकता है। आरा शहर के बारे में कुछ बताने और जानने से पहले हमें दुनिया के कुछ चुनिंदा शहरों के बारे में जान लेना चाहिए कि वे शहर इतने समृद्ध, विकसित तथा सुंदर कैसे बने। इसकी एक झलक से हम अपने शहर को भी अच्छी तरह से समझ सकते हैं। आजकल स्मार्ट सिटी की बात की जा रही है, यह परिकल्पना भी पश्चिम की ही है। फिर भी अगर हम पेरिस, लंदन, एथेंस, बर्लिन, मास्को, सिडनी, न्यूयार्क, वाशिंगटन जैसे शहरों और बीसवीं सदी के मध्य में विकसित हुए शंघाई, टोक्यो और सिंगापुर आदि को देखें तो हमें महसूस होगा कि हम अभी काफ़ी पिछड़े हैं और हमारा देश अभी विकासशील देश ही है लेकिन पिछले तीन दशकों में भारत के शहरों तथा कस्बों में भी तेज़ी से बदलाव देखने को मिला है। भारत के शहर अब पहले की तरह नहीं रह गए हैं। नई आर्थिक नीति के बाद इन शहरों की संस्कृति तथा मिजाज़ एवं चाल–ढाल में भी परिवर्तन आया है।

फिर भी रोम, पेरिस और लंदन जैसे शहरों की बात ही कुछ और है। ये दुनिया के विकसित शहर माने जाते हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी वाराणसी को टोक्यो बनाने की बात कही है। यह अलग बात है कि हमारे देश के शहरों को बदलने में काफ़ी वक्त लगेगा और यह तभी संभव है जब देश की अर्थव्यवस्था काफी मज़बूत हो। नए शहर बसाते हुए हम नई योजना, आधारभूत ढांचे, परिकल्पना की बात तो करते हैं लेकिन पुराने शहरों की प्राचीनता और उसकी ऐतिहासिकता को बरकरार रखकर उसे कैसे आधुनिक रूप प्रदान किया जाए, यह चुनौती का काम है। दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, वाराणसी, आगरा, उज्जैन, बंगलुरू, हैदराबाद, अहमदाबाद, जयपुर,

लखनऊ, पटना, भोपाल, देहरादून जैसे शहर भी अब वैसे शहर नहीं रहे जो तीन–चार दशक पहले थे। आरा शहर भी अब वैसा नहीं रहा जो सत्तर के दशक में था। अगर दुनिया के कुछ पुराने शहरों का भी जायजा लें तभी हम अपने शहर को जान–बूझ सकते है।

यह अलग बात है कि हमारा मुल्क ब्रिटेन की औपनिवेशिक संस्कृति से भी त्रस्त रहा लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन ने गुलामी के उस बोझ को दूर फेंकने का काम किया और तब हम एक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष तथा उन्नत राष्ट्र बन पाए। यहां इन शहरों का ज़िक्र इसलिए किया जा रहा है कि हम सब विश्व नागरिक के रूप में दुनिया के अन्य शहरों से भी किस तरह प्रभावित रहे हैं। हमारे सौंदर्यबोध के निर्माण तथा ज्ञान–विज्ञान के प्रचार–प्रसार में इन शहरों ने किस तरह की भूमिका हमारे मानस के निर्माण में निभाई, इसका पता चल सके। अब लंदन ही नहीं, दुनिया के कई शहरों में एक मिनी भारत बन गया है। जिस तेजी से प्रवासी भारतीयों की संख्या बढ़ती जा रही है, उसमें अब शहरों को लेकर वह दूरियां नहीं रहीं। खासकर आज संचार माध्यमों ईमेल, इंटरनेट, ट्विटर, फेसबुक एवं व्हाट्सएप ने दुनिया के शहरों को आपस में जोड़ दिया है। अब पूरा विश्व एक ग्लोबल गांव में तब्दील होता जा रहा है।

दुनिया के हर शहर के जन्म और विकास की दास्तान बहुत ही दिलचस्प है। रोम को ही ले लीजिए, जिसे दुनिया का सबसे पुराना शहर माना जाता है। रोम के बारे में मशहूर कहावत है–*रोम वाज नाट बिल्ट इन अ डे यानी रोम केवल एक दिन में नहीं बना है।* यह कहावत लगभग हर शहर पर लागू होती है।

रोम के बारे में कहा जाता है कि वह लैटिनी गांव से बना है। यह शहर पांच हजार वर्ष पुराना है। इसकी स्थापना 21 अप्रैल 753 ईसा पूर्व हुई थी। यहां आपको रोम की संक्षिप्त कहानी इसलिए दी जा रही है कि आप यह समझ सकें कि शहरों का निर्माण किस तरह होता है और धीरे–धीरे ये शहर किस तरह अपने भीतर एक इतिहास समेट लेते हैं। रोम यूरोप के पुनर्जागरण का एक केंद्र रहा है। टाइबर नदी के किनारे का यह खूबसूरत शहर पूरी दुनिया में अपने वास्तुशिल्प के लिए जाना जाता है। रोम पर जितनी किताबें लिखी गई हैं, शायद ही किसी अन्य शहर पर इतनी महत्त्वपूर्ण किताबें लिखी गई हों। विश्वप्रसिद्ध इतिहासकार एडवर्ड गिब्बन ने तो रोम साम्राज्य के उत्थान और पतन पर बीस खंडों में पुस्तक लिखी है जो शायद किसी भी साम्राज्य

के बारे में लिखी गई पुस्तक से अधिक महत्त्वपूर्ण, तथ्यपरक और इतिहासपरक किताब है।

रोम दुनिया का पहला मेट्रोपोलिटन शहर भी माना जाता है। रोम का नाम वहां के प्रथम राजा रोमूलस के नाम पर पड़ा था। रोम कैथोलिक चर्च की सत्ता का भी एक केंद्र रहा है। पूरे यूरोप में चर्च और राज्य के बीच संघर्ष होता रहा है। रोम इस संघर्ष का भी एक प्रतीक है। 1861 में रोम को इटली की राजधानी घोषित किया गया था और वर्तमान में वहां पचास लाख की आबादी बसती है।

रोम के बाद पेरिस भी दुनिया के सुंदर शहरों में से एक है। वह कला और बौद्धिकता का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। उसे सौंदर्य का भी शहर कहा गया है। ई. पूर्व तीसरी सदी में स्थापित यह शहर विश्व के पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है। इसे कला का शहर तथा रोशनी का शहर भी कहा जाता है। यह यूरोप के प्रबोधन काल का महत्त्वपूर्ण केन्द्र भी रहा है और ज्ञान की रोशनी देता रहा है। रेनुआ, पिकासो और मतीज जैसे विश्वप्रसिद्ध चित्रकारों का भी यह शहर रहा है तो कई महान विचारकों ने भी वहाँ जन्म लिया। अर्नेस्ट हेमिंग्वे, जेम्स ज्वायस जैसे विश्वप्रसिद्ध लेखक भी यहां रहे हैं। सीन नदी के किनारे बसा यह शहर एफिल टॉवर के लिए भी जाना जाता है।

पेरिस पर पहली पुस्तक 1470 में ही छपी थी। इससे अंदाज़ लगाया जा सकता है कि यहां पढ़ाई लिखाई को लेकर लोग कितने सचेत रहे हैं। रूसो, बादलेयर, माइकेल प्रूस्त, एमिल जोला, मोपासा, बाल्जाक जैसी विश्वप्रसिद्ध हस्तियां इस शहर से जुड़ी रही हैं। ज्यांपॉल सार्त्र, सीमान द बुआ, कामू, कॉलेटी, आंद्रेजीद, आंद्रे मार्लेक्स जैसे लेखक भी यहां पैदा हुए। पेरिस फैशन के लिए भी दुनिया में जाना जाता है। रोम और पेरिस के बाद लंदन शहर को दुनिया के एक बड़े बौद्धिक, सांस्कृतिक केंद्र के अलावा सत्ता का भी एक प्रतीक माना गया। पांचवीं सदी में रोमन साम्राज्य के पतन के बाद लंदन एक स्वतंत्र राजधानी के रूप में जाना गया। ब्रिटिश पार्लियामेंट को पूरी दुनिया में संसदीय प्रणाली का जनक माना जाता है। टेम्स नदी के किनारे बसा यह शहर अपने प्राचीन स्मारकों, इमारतों और वास्तु शिल्प के लिए भी चर्चित रहा है। एक शाही अंदाज एवं संस्कृति पूरे शहर में दिखाई देती है। लंदन विश्व सभ्यता का भी एक केंद्र है। यह शेक्सपियर, मिल्टन, वड्र्सवर्थ, कीट्स, शेली तथा चार्ल्स डिकेंस का भी शहर है जो अंग्रेजी के विश्वप्रसिद्ध

लेखक रहे हैं। यह कार्ल मार्क्स का भी शहर रहा है। इन लोगों ने पूरी दुनिया को प्रभावित किया। जेम्स वॉट और माइकेल फराडे का भी यह शहर रहा जो विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति लाने में सफल रहे। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति ने दुनियाभर को प्रभावित किया। ब्रिटिश साम्राज्य ने एक समय पूरी दुनिया पर शासन कर अपनी सभ्यता, भाषा और संस्कृति भी दूसरों पर लादने की कोशिश की। लंदन उस साम्राज्य का एक प्रतीक भी रहा पर इसके साथ–साथ पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान शिक्षा एवं शोध का भी एक केंद्र रहा जिससे भारतीय जनता को काफी कुछ सीखने–जानने का मौका मिला।

स्मृतियों में कैद शहर

विश्व के कई प्रमुख शहरों के इतिहास और उनकी संस्कृति को जानने के बाद जब हम अपने छोटे से शहर को देखते हैं तो हमें यह भान होता है कि हम अभी विकास के रास्ते पर हैं और अपनी मंजिल पर नहीं पहुंचे हैं। लेकिन इसके बावजूद हमारा अपना शहर बहुत कुछ कहता है और वह अपना इतिहास भी समेटे रहता है। इसी में उसकी अर्थवत्ता भी छिपी रहती है और वह हमारी स्मृतियों में दर्ज होता रहता है। जबसे मैंने होश संभाला है, आरा शहर की कई झलक मेरी स्मृतियों में आज भी कैद है। पहली बार मैं आरा 1969 में गया था जब मेरे मामा की वहां शादी हुई थी। यूं तो ननिहाल अरियांव जाते वक्त आरा शहर ट्रेन से ही देखता रहा। पटना से कोइलवर पुल पार करते हुए जब ट्रेन कोइलवर के बाद आरा रुकती थी तो सहसा उस शहर की खुशबू भीतर ही भीतर भर जाया करती थी। तब आरा स्टेशन आज की तरह नहीं था। प्लेटफार्म पर तब आरा की स्पेलिंग अंग्रेजी में एआरआरएएच लिखी होती थी। आरा के बाद जगदीशपुर, बिहिया के साथ बनाही, डुमरांव और फिर बक्सर की अनेक यादें दर्ज हैं। मैं अपने गांव जाने के लिए कभी तो बक्सर उतरता था और कभी आरा उतरकर विक्रमगंज नटवार होते हुए अपने गांव जाता था। लेकिन आरा उतरते ही भोजपुर प्रदेश की गंध नथुने में घुस जाती थी जिसमें मिठास के साथ दबंगई भी समाई होती थी। उन दिनों स्टेशन पर ही तांगे और टमटम मिलते थे जो अब दुर्लभ हो गए हैं।

ट्रेन जब कोइलवर पुल से गुजरती तो हम सब ट्रेन की खिड़की वाली सीट पर जाकर बैठ जाते और सोन नदी के पानी में ऊपर से झांकने की कोशिश करते। नदी के बीच–बीच में रेत के टीले होते थे। अक्सर नदी में पानी कम होता था। कई बार नदी के बीचों–बीच ट्रक भी खड़ा हमने देखा था। हम अक्सर अपने मां–पिता या चाचा से सोन नदी के बारे में पूछते थे और फिर आरा शहर के बारे में भी जानने की कोशिश करते थे। शाहाबाद जिले का वह सबसे महत्वपूर्ण शहर था क्योंकि तब बक्सर जिला भी नहीं बना था। आरा तो शाहाबाद जिले का मुख्यालय था। आरा स्टेशन से उतरकर हमलोग अक्सर रिक्शे या टमटम से अपने रिश्तेदारों के घर जाया करते थे। पर 1969 में जब हम अपने मामा की शादी में आए तो मोटर पर पहली बार बैठने का

सुख मिला। मामा के ससुर वहां के सेटलमेंट ऑफ़िसर थे। इसलिए मामा की शादी बड़ी धूमधाम से हुई। मेरे मामा विंध्यवासिनी रंजन श्रीवास्तव मर्चेंट नेवी में इंजीनियर थे। वे इलाहाबाद के इरविन कॉलेज और मोतीलाल इंजीनियरिंग कॉलेज से पढ़े–लिखे थे।

मामा की शादी में अच्छा खासा इंतजाम था और हम लोंगों की बारात सर्किट हाउस में ठहरी थी। थोड़ी ही दूर पर मामा के ससुर एन.सी. नारायण की कोठी भी थी। यही आरा शहर से मेरा पहला परिचय था। संभव है मेरे माता – पिता पहले भी मुझे लेकर आरा आए हों। लेकिन उसकी कोई स्मृति नहीं है। मेरे एक और बड़े मामा की भी शादी आरा शहर से ही हुई थी। हालांकि वह उत्तर बिहार के पूर्णिया शहर में थे। बहरहाल, मेरी पहली आरा यात्रा की एक झलक अब भी रह–रहकर कौंधती है लेकिन तब मैं आरा शहर के इतिहास, उसकी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विरासत से परिचित नहीं था। उसके बाद भी मैं कई बार आरा शहर गया लेकिन तब मुझे मालूम नहीं था कि हिंदी के प्रथम गद्य लेखक सदल मिश्र आरा के थे। बाबू वीर कुंवर सिंह का कोई मकान भी वहां है और जगदीशपुर से वहां तक कोई सुरंग भी बिछी हुई थी। वीर कुंवर सिंह की दो प्रेमिका करमन और धरमन के नाम पर भी आरा शहर में दो मुहल्ले हैं। जैसे–जैसे मैं बड़ा होता गया, आरा शहर के बारे में और जानकारियां मुझे मिलती रहीं। लेकिन इस पुस्तक के लिखने के क्रम में इस शहर को जितना जाना, उतना पहले कभी नहीं जानता था। अब मुझे लगता है कि हम लोग अपने शहर के इतिहास और संस्कृति से कितना अपरिचित होते हैं और पूरी ज़िंदगी गुज़ारने के बाद भी हम अपने शहर को ठीक–ठीक नहीं जान पाते हैं। जब मैंने आरा शहर के बारे में वहां के रहने वाले लोगों को कई जानकारियां दीं तो वे भी आश्चर्यचकित रहे और उनसे वे अनभिज्ञ थे। उन्हें भी इसके समृद्ध इतिहास और विरासत की पूरी जानकारी नहीं थी। उन्हें थोड़ा अचरज भी हुआ कि आरा में ये सब चीज़ें हैं।

मैं अपने बचपन में नहीं जानता था कि चितरंजन दास, मौलाना आजाद, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय और मोतीलाल नेहरू भी कभी आरा आए थे तथा संविधान सभा के अध्यक्ष रहे बिहार निर्माता सर सच्चिदानंद सिन्हा का बचपन भी आरा शहर में ही बीता है। इसलिए मुझे लगता है कि किसी भी शहर के स्कूलों में कम से कम उस शहर का संक्षिप्त इतिहास और उस शहर के महत्व को स्कूलों में बताया जाना चाहिए ताकि हम लोग अपने शहर पर गर्व कर सकें और इसे पूरी तरह जान सकें।

मामा की शादी के बाद जिस घटना की स्मृति मेरे मन में दर्ज है, वह है आरा शहर के मॉडल स्कूल में बीते कुछ दिन। मेरे गोतिया के बड़े बाबू जी अवध बिहारी लाल उस स्कूल के प्राचार्य थे। वह पक्के गांधीवादी थे और अपने गांव के आसपास के पूरे इलाके में पहले एम.ए. थे। 1942 के आंदोलन में वे जेल भी गए। उन्हें स्वतंत्रता सेनानी की पेंशन भी मिलती थी। तब मॉडल स्कूल का बहुत नाम था। वह आरा शहर के श्रेष्ठ स्कूलों में गिना जाता था। उस समय स्कूल की इमारत बुलंद थी। उन्हें जो क्वार्टर मिला था, वह भी भव्य था। इतने ऊंचे–ऊंचे कमरे मैंने अपने जीवन में नहीं देखे थे। अवध बिहारी लाल की छवि एक ईमानदार, सज्जन, गांधीवादी की थी जो जिंदगी भर खादी के कपड़े पहनते रहे। वह पांवों में खड़ाऊं पहनते थे। तब खड़ाऊं पहनने का रिवाज था। मेरे पिता भी खड़ाऊं पहनते थे। हमारे खानदान में अवध बिहारी लाल जी का बड़ा सम्मान था। वे आपातकाल में जेल भी गए थे। और जयप्रकाश नारायण की जीवनी भी उन्होंने लिखी थी।

आरा मॉडल स्कूल के पास ही थोड़ी दूर पर आरन देवी का मंदिर था। तब शहर में दो सिनेमा हॉल थे। *रूपम* और *सपना* नाम था। मैंने बचपन में उन सिनेमाघरों में फिल्में भी देखीं थीं, लेकिन अब न तो फिल्मों का नाम याद है, न हीरो–हीरोइन का नाम याद ही है। तब आरा शहर छोटा शहर हुआ करता था। बीच में रमना मैदान भी काफी बड़ा था और अधिक खुला–खुला था। उन दिनों शहर में इतने बाज़ार और दुकानें नहीं थीं। यह चालीस साल पुरानी बात है। तब जैन कॉलेज और महाराजा कॉलेज ही थे। तब मैंने जगजीवनराम कॉलेज का नाम शायद नहीं सुना था। और आज की तरह तब गली–गली में प्राइवेट स्कूल तथा दवा की इतनी दुकानें एवं प्राइवेट डॉक्टर भी नहीं थे। सड़कों पर बहुत कम कारें तथा मोटरसाइकिलें थीं। स्टेशन से उतरने पर तब टैंपो नहीं मिलते थे। तांगा, टमटम या रिक्शा से ही हमलोग शहर में जाया करते थे। तब प्लेटफ़ार्म और स्टेशन घर भी काफ़ी छोटा था। टिकट घर भी छोटा ही था। हम लोग तब अक्सर शटल गाड़ी से ही आते–जाते थे। दिल्ली के लिए तब मगध ट्रेन भी नहीं खुली थी। मुंबई जाने के लिए भी कोई सीधी ट्रेन नहीं थी। पटना से मुंबई जनता से इलाहाबाद जाकर हम लोग मुंबई के लिए कनेक्टिंग ट्रेन पकड़ते थे। उन दिनों डीएमयू या एमयू ट्रेनें भी नहीं थीं। ट्रेन में तृतीय श्रेणी में ही बैठकर हम लोग पटना से आरा आते थे। आरा शहर आने में दो ढाई घंटे से कम समय नहीं लगता था। ट्रेन में सभी भोजपुरी भाषी लोग होते थे। तब ट्रेन

में भाईचारा अधिक था और लोग एक–दूसरे की काफी मदद करते थे। ट्रेन में भीड़ बहुत होती थी। लेकिन तब भी लोग आपस में मिलजुलकर सफ़र पूरा करते थे। ट्रेन में मूंगफली, भूंजा, ककरी, चना जोरगरम, खीरा आदि खाने का अधिक रिवाज था। तब कोल्ड ड्रिंक या बिसलेरी का पानी ट्रेनों में नहीं मिलता था। वैसे ट्रेन की हालत काफ़ी खस्ता होती थी। अक्सर चेन पुलिंग हो जाती थी। कमोबेश यह स्थिति आज भी है। लेकिन दिल्ली से हावड़ा के बीच अनेक रेलगाड़ियां होने से आरा आने–जाने की सुविधा पहले से बेहतर हो गई है। यह शहर आज भी मेरी स्मृतियों में कैद है और अब जब दिल्ली से पटना जाता हूं तो ट्रेन में इस शहर को देखते हुए बचपन की स्मृतियाँ ताज़ा हो जाती है। मेरी तरह कई लोग जो अपने राज्य को छोड़कर दूसरे राज्यों में नौकरी के लिए बस गए हैं या रहते हैं, वे भी जब अपने राज्य लौटते हैं तो उन्हें भी मेरी तरह ही अपना शहर पुकारता होगा और वे ट्रेन में इस शहर की एक झलक देखकर अपने बचपन की स्मृतियां ताज़ा कर लेते होंगे। अब इन शहरों से इसी तरह का एक रिश्ता जीवन भर क़ायम रहता है।

शाहाबाद इतिहास के आइने में

शाहाबाद का इलाका पौराणिक काल में करुष प्रदेश के रूप में विख्यात था। पंडित सकल नारायण पाण्डेय ने भी *आरा पुरातत्व* में लिखा है कि महाभारत काल से पहले आरा करुष प्रांत के रूप में समझा जाता था। करुष मनु के नौ पुत्रों में से एक थे। भगवत पुराण में करुष का महान योद्धा भी बताया गया है। बाद में करूप प्रदेश को मगध राज्य में शामिल कर लिया गया। ई. पूर्व 400 वर्ष पहले शाहाबाद जिला मगध राज्य का भाग था। यह जिला गुप्त साम्राज्य तथा सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन के साम्राज्य का भी हिस्सा था।

भोजपुर जिला स्थापना दिवस समारोह पर आयोजित स्मारिका में डॉ. कन्हैया बहादुर सिन्हा लिखते हैं कि यह प्रामाणिक है कि तुर्कों एवं अफगानों ने भी शाहाबाद पर राज्य किया था। 1324 में भोजराज के पुत्र देवराज द्वितीय ने अपने पिता की स्मृति में भोजपुर राज्य की स्थापना की थी। 1500 ई. तक मुस्लिम आक्रमणकारियों का भोज राजाओं से भीषण संघर्ष हुआ और राजा शेरशाह के पिता हसन खान की अधीनता स्वीकार कर ली। भोज के उत्तराधिकारियों ने शाहाबाद के तीन प्रमुख स्थानों पर अपना अधिकार जमाया जिसमें जगदीशपुर, बक्सर एवं डुमराँव शामिल थे। महाराज डुमराँव उज्जैन राजपूतों के इसी घराने से आते थे। लेकिन 1529 में अफगान शासकों पर बक्सर की विजय से ही इस इलाके का नाम शाहाबाद पड़ा जिसका अर्थ सम्राट का शहर होता है।

डॉ. सिन्हा लिखते हैं कि 1685 में शाहाबाद एवं रोहतास जिलों का अलग–अलग गठन हुआ था। तब चौसा उसमें शामिल नहीं था। 1787 में लार्ड कार्नवालिस के शासनकाल में शाहबाद जिले के प्रथम जिला समाहर्ता विलियम अगस्त ब्रुक बनाए गए। 1818 में चौसा को शाहबाद जिले में मिला लिया गया। 1865 में आरा में जब म्यूनिसिपैलिटी शुरू हुई तब सोन नदी से शुद्ध जल की आपूर्ति होती थी। 1846 में सामान्य सब–डिवीजन बना था। उससे पहले यह शाहाबाद सब–डिवीजन का हिस्सा था जिसका मुख्यालय आरा था। 1857 में बक्सर सब–डिवीजन तथा 1865 में भभुआ सब–डिवीजन बना। 1972 में शाहबाद जिले को भोजपुर एवं रोहतास नामक जिलों में विभक्त कर दिया

गया। बाद में 1992 में बक्सर नाम से एक अलग जिला बना। इस तरह 1992 से भोजपुर जिला अलग हुआ जिसका मुख्यालय आरा है।

भोजपुर 24.74 वर्ग किलोमीटर में फैला है। इसकी प्रमुख नदियों में गंगा और सोन हैं जबकि सहयोगी नदियों में गांगी, बांस, चेठ तथा कुम्हारी हैं। इस पूरे इलाके में धान, गेहूं , चना और मक्का की प्रमुख फसलें होती हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार भोजपुर जिले की आबादी 27,28,407 थी। इनमें कुल साक्षर लोग 15 लाख 99,151 थे। साक्षर पुरुष 9,73,486 थे तो साक्षर महिलाएं 6,25,665 थीं। इस जिले में 1244 गांव हैं।

इस पूरे जिले में एक ही सदर अस्पताल है जबकि 27 प्राइमरी हेल्थ केंद्र हैं। 167 बैंक शाखाएं हैं। भोजपुर जिला आरा सदर, जगदीशपुर और पीरो सब–डिवीजन में बँटा है। यह पूरा इलाका उपजाऊ है और पूरे बिहार में गेहूं की पैदावार सबसे अधिक यहीं होती है। इस इलाके में मक्का, अरहर, मसूर, तिलहन, सब्जी, गन्ना तथा फल की भी खेती होती है। इस इलाके में खनिज काफी कम है और यह पूरा इलाका सिर्फ खेती का ही क्षेत्र है। सोन नदी से रेत की निकासी ही प्रमुख खनिज है। सोन नदी का करीब 40 किलोमीटर हिस्सा भोजपुर जिले से मिलता है।

रोहतास से अलग होने के बाद भोजपुर जिले में उद्योग–धंधे कम हो गए क्योंकि औद्योगिक इकाइयां रोहतास में ही थीं। इसलिए भोजपुर जिले में लघु एवं कुटीर उद्योग ही बचे रह गए हैं।

भोजपुर जिले के मिजाज़ को ही समझकर आरा शहर को भी समझा जा सकता है। कालांतर में गांवों से पलायन कर अनेक लोग आरा शहर में आने लगे क्योंकि गांवों में शिक्षा तथा स्वास्थ्य का बुरा हाल था। गांवों में झोलाछाप नीम हकीम डॉक्टर ही होते थे। आरा में कचहरी होने के कारण भी भोजपुर जिले के गांव के लोग मुकदमों के चक्कर में इस शहर में आते थे और उनमें से कई लोग धीरे–धीरे आरा में ही बसते गए। भोजपुर के गांवों में ऊंचे काश्तकारों को जब अच्छी फसल से आय होने लगी तो वे आरा शहर में पूंजी निवेश भी करने लगे। उसमें अधिकतर अमीर किसान आरा शहर में दुकान, जमीन का प्लॉट आदि खरीदने लगे और अतिरिक्त आय के लिए व्यवसाय भी करने लगे। इस वजह से भी आरा शहर की आबादी धीमे–धीमे बढ़ने लगी और आजादी के बाद भोजपुर जिले का एकमात्र प्रमुख शहर बन गया।

भोजपुर जिले में सवर्ण, निचली और पिछड़ी जातियों के बीच भूमि संबंधों को लेकर तनाव भी बढ़ते गए। समाज में ऊंच–नीच और जातिगत भावनाओं से विद्वेष भी बढ़ा। इसके कारण इस पूरे इलाके में असंतोष भी बढ़ा और धीरे–धीरे नक्सलवाद ने भी पैर जमाने शुरू कर दिए। आरा शहर में भी इसकी झलक वहां की राजनीतिक गतिविधियों में दिखाई देती है और इससे कानून एवं व्यवस्था भी प्रभावित हुई।

आरा शहर में भोजपुर जिले की संस्कृति और जीवन शैली आज भी पूरी तरह व्याप्त है, यद्यपि इसमें कई तरह के बदलाव दिखाई दे रहे हैं। लेकिन एक सामंती ठसक, वर्चस्व और आधिपत्य की भावना तथा मानसिकता भी इस शहर में दिखाई देती है और यह कहावत भी मशहूर है। आरा जिला घर बा कौन बात के डर बा।

आरा का नामकरण

दुनिया के हर शहर और गांव के अलग–अलग नाम हैं। किसी शहर या गांव का नाम कैसे पड़ा, यह जानना बहुत दिलचस्प है। हर गांव और शहर के नामकरण की कहानी अलग–अलग है। कभी किसी शहर या गांव, का क्रम किसी व्यक्ति, किसी पौराणिक, घटना के आधार पर पड़ा तो कई अन्य नामकरणों के पीछे कोई उचित तर्क भी नहीं दिया जा सकता है। किंतु क्षेत्र विशेष की जनता ने किन परिस्थितियों में उसका नामकरण किया, यह अंदाज़ा लगाना बहुत मुश्किल है। इसके बारे में कोई ठोस या निश्चित मत व्यक्त नहीं किया जा सकता कि नामकरण के पीछे यही अमुक बात रही होगी। कई बार हम अनुमान ही लगा पाते हैं कि नामकरण के पीछे यह कारण रहा होगा। सभ्यता के विकास में शहरों, गांवों और देश के नामकरण की कहानी का अभी तक पर्याप्त अध्ययन या शोध नहीं हुआ है। अगर कोई देश अपने शहरों के नामकरण की कहानी पर शोध एवं अनुसंधान कराए तो वह बहुत ही रोचक होगा। इससे इतिहास की कई परतों को अनावृत किया जा सकेगा और कई ऐसे तथ्य सामने आएंगे जिन्हें जानकर हमें काफ़ी आश्चर्य भी होगा। इन शहरों और गांवों के नामकरण के पीछे भाषा एवं शब्दों की उत्पत्ति का भी इतिहास जुड़ा है। किसी भाषा में किसी शब्द की उत्पत्ति कैसे होती है, यह शोध का विषय है। बहरहाल आरा शहर के नामकरण की कई कहानियां प्रचलित हैं। कुछ कहानियों पर सर्वानुमति है और वे लोक कथन का ही हिस्सा हैं। उनका कोई ऐतिहासिक या पौराणिक साक्ष्य भी उपलब्ध नहीं है। परंतु जनमानस में वे कथाएं प्रचलित हैं लेकिन आधिकारिक तौर पर प्रशासन उनमें से किसी उपयुक्त और तर्कसंगत कथन या मिथक को स्वीकृत कर लेता है और वह प्रामाणिक अवधारणा मान ली जाती है। आरा शहर के बारे में भी कई तरह की कथाएं जनमानस में छायी हुई हैं।

1902 में प्रकाशित *आरा पुरातत्व* के लेखक पंडित सकल नारायण पाण्डेय ने उस पुस्तक की भूमिका में भी लिखा था–'प्रत्येक पढ़ा–लिखा मनुष्य अपने गांव, जिला और प्रांत भर की पुरानी बातों का अनुसंधान करे और सामाजिक बातों को पुस्तक या समाचार पत्रों द्वारा प्रकाशित करते जाएं।'

लेकिन आज तक हम इस दिशा में कुछ नहीं कर पाए जिनमें शहरों तथा जिलों के नामकरण के पीछे अनेक भ्रांतियां हैं।

बहरहाल, श्री पाण्डेय ने यह भी लिखा है कि आरा का सबसे पुराना नाम चक्रापुरी था। इसके पीछे उन्होंने *महाभारत* की एक घटना का ज़िक्र किया है जिसके अनुसार *महाभारत* के आदि पर्व में लिखा है कि पाण्डव जब लाक्षागृह से भागे, तब वेदव्यास जी से इन लोगों की भेंट हुई। उनके कहने पर पाण्डवों ने अपनी माता के साथ एक चक्रापुरी में ब्राह्मण के घर डेरा किया। चक्रापुरी के निकट बकासुर नामक एक राक्षस रहा करता था। आरा के पास एक गांव बकरी है जिसका संबंध बकासुर से जान पड़ता है क्योंकि उस गांव के टीले को बकासुर का गढ़ कहते हैं। वहां बकासुर का चौरा भी है।

आरा पुस्तक में एक अनुमान यह भी लगाया गया है कि चक्रापुरी से आरा नाम इसलिए पड़ा होगा कि एक चक्र–पहिये में कई आरा (स्कोप) होते हैं, वैसे ही एक चक्रापुरी में कई मुहल्ले होंगे जिन्हें आरा कहते होंगे। कालक्रम में कई मुहल्ले नष्ट हो गये होंगे तथा एक ही मोहल्ला बचा रह गया होगा। और इसलिए लोग एक चक्र का नाम छोड़कर आरा कहने लगे होंगे।

पंडित सकल नारायण पाण्डेय ने यह भी लिखा है कि कई लोग यह कहते हैं कि राजा मयूरध्वज ने यहीं पर अपने पुत्र को आरा से चिरवाया। इसी से यह नाम आरा पड़ा। हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार एवं वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय में भोजपुरी विभाग के अध्यक्ष नीरज सिंह ने भी मुझे यह कहानी सुनाई। ज़ाहिर है, यह 'लोक कथा' जनमानस में रही होगी लेकिन पंडित सकल नारायण पाण्डेय ने उस पुस्तक में इस लोक कथा पर संदेह व्यक्त किया है। राजा मयूरध्वज की पुत्रबलि के कारण इस नगर का नाम आरा पड़ा, यह बात संदेहजनक है क्योंकि छपरा में राजा मयूरध्वज की राजधानी का चिह्न रत्नपुरा मुहल्ला अभी तक है, जहां उन्होंने अपने पुत्र की बलि दी थी, उसी का नाम चिरानंद छपरा अभी तक प्रसिद्ध है। पाण्डेय जी यह भी लिखते हैं कि पुराणों के अनुसार मयूरध्वज का राज्य मुरादाबाद की ओर था। इसलिए मयूरध्वज की कथा को लेकर कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

पाण्डेय जी ने यह भी लिखा है कि मेरी समझ में आरा महाभारत के युद्ध के पहले करुष प्रांत में समझी जाती थी। यह शब्द संस्कृत का है।

आरा शाहाबाद जिले (भोजपुर) जिले का हिस्सा रहा है। शाहाबाद और भोजपुर के नामकरण की अलग कहानी है पर सर्वानुमति यह है कि आरा का नाम अरण्य से पड़ा क्योंकि इस क्षेत्र में बहुत घना जंगल था और लोककथाओं के अनुसार इस जंगल में ही अरण्य देवी थीं जिनके नाम पर आरन देवी नाम का मंदिर है।

पंडित सकल नारायण पाण्डेय ने लिखा है कि –जैसे सारंगारण्य से सारन और चम्पकारण्य से चम्पारण बना, वैसे ही अरण्य से आरा शब्द अपभ्रंश होकर प्रसिद्ध हुआ। इस अरण्य की गणना प्रसिद्ध नौ अरण्यों में है जिसमें से कई बिहार में ही हैं–

आरा पुरातत्व के अनुसार शाहाबाद जिले के गजेटियर में यह लिखा है कि 1528 में बाबर ने अफ़गानों को पराजित कर आरा नगरी में डेरा डाला था और उन्होंने बिहार प्रांत पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसी से आरा शहर का नाम शाहाबाद पड़ा जो वस्तुतः जिले भर का नाम पड़ गया।

पुस्तक में यह भी लिखा है कि मुसलमानी राज्य से पहले यह आरा नगरी कभी–कभी मगधेश्वर के अधीन हो जाती थी तो भी मगध के अंतर्गत नहीं समझी जाती थी क्योंकि सोन के उस पार के देश को ही मगध कहते हैं। राज्य के प्रारंभ में यह अवध क्षेत्र में गिनी जाती थी और उसकी सीमा शोणनद के पास थी। इससे पहले खिलजी ने 1302 के निकट आरा को अपने अधिकार में करके संपूर्ण बिहार और बंगाल पर अपना आधिपत्य जमाया। तब से 1330 तक यह देश बंगाल के हाकिम के अनुशासन में रहा। 1330 के बाद से कभी–कभी बिहार के हाकिम स्वतंत्र रूप से नियुक्त होते थे जिनके अधीन आरा शहर होता था।

अंग्रेजों के समय 1765 में राबर्ट क्लाइव ने 26 लाख रूपये देकर बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी का अधिकार ले लिया और अंग्रेजी राज की नींव इस प्रांत में दृढ़ हो गई। जॉन लिविस चैरियर और स्पायर साहेब जी मजिस्ट्रैटी के लिए पहले यहां आए थे और 1794 से यहीं रहे। उनकी कब्र जज साहब के तालाब के किनारे गांगी के पास है। इससे पता चलता है कि 1765 से 1800 के बीच आरा शहर ने अपना स्वरूप ग्रहण किया होगा। सदल मिश्र विलियम फोर्ट कॉलेज खुलने पर कलकत्ता गए थे। वह आरा के मिश्र टोला में रहते थे, तब बाबू बाज़ार और करमन टोला जैसे पुराने मोहल्ले नहीं बने थे। उस ज़माने में 1778 में आरा में हाई स्कूल स्थापित हो

गया था। इसका अर्थ यह हुआ कि आरा शहर ने अपना आकार ग्रहण कर लिया था।

आरा शहर के बारे में यह कहा जाता है कि पहले यहां गंगा नदी बहती थी। सकल नारायण पाण्डेय ने लिखा है कि अब उत्तरी छोर पर चार कोस हटकर गंगा बह रही है। जिस स्थान पर पहले गंगा थी, उस स्थान पर अब गंगा नहीं है। गांगी का अर्थ है गंगा से निकली अथवा गंगा से जुड़ी। गंगा जिस स्थान को छोड़ती है, उस स्थान पर मिट्टी इकट्ठी होने से जितनी ढेर लगती है, उस क्रम पर ध्यान देने से मालूम होता है कि आरा छोड़े गंगा को चार हजार वर्ष से अधिक हो गए हैं। गांगी नदी पर एक पुल है। इस पुल के बाद मुख्य शहर समाप्त हो जाता है लेकिन उसके बाद भी बस्तियां हैं।

विलियम फोर्ट कॉलेज और सदल मिश्र

क्या आपने हिन्दी के आरम्भिक गद्य लेखकों में से एक सदल मिश्र का नाम सुना है ? वह इसी आरा शहर के थे और उनका रिश्ता कोलकता के विलियम फोर्ट कॉलेज से भी था, यह तब की बात है जब 1857 की स्वाधीनता संग्राम नहीं हुआ था और वीर कुंवर सिंह राष्ट्रीय क्षितिज पर सामने नहीं आए थे, इस तरह देखा जाए तो सदल मिश्र ही इस पूरे इलाके के पहले बड़े प्रतीक के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी गद्य के विकास के बारे में *हिंदी साहित्य का इतिहास* नामक पुस्तक में विक्रम संवत 1798 में रामप्रसाद निरंजनी के भाषा योग वासिष्ठ नामक ग्रंथ को साफ–सुथरी खड़ी बोली में लिखा बताया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि मुंशी सदासुख लाल और लल्लू लाल जी से 62 वर्ष पहले, खड़ी बोली का गद्य परिमार्जित रूप में आ चुका था।

शुक्लजी ने यह भी लिखा है कि फोर्ट विलियम कॉलेज (कलकत्ता) की स्थापना हुई तो लल्लू लाल जी और सदल मिश्र ने क्रमशः *प्रेमसागर* और *नासिकेतोपाख्यान* लिखा। उन्होंने यह भी लिखा कि खड़ी बोली गद्य को एक साथ आगे बढ़ाने वाले चार महानुभाव हुए मुंशी सदासुख लाल, सैय्यद इंशा अल्ला खां, लल्लू लाल जी और सदल मिश्र। विलियम फोर्ट कॉलेज की स्थापना लार्ड वेलेस्ली ने 10 जुलाई 1800 को की थी जो वहां के तत्कालीन गर्वनर थे।

शुक्ल जी ने सदासुख लाल को दिल्ली का, इंशा अल्ला खां को दिल्ली से आकर बसे लखनऊ का तथा लल्लू लाल जी को आगरा का गुजराती ब्राहमण बताया है। सदल मिश्र के बारे में उन्होंने लिखा है कि वह बिहार के रहने वाले थे। लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि सदल मिश्र आरा में रहते थे। मुझे आरा शहर से ऐसे दस्तावेज़ मिले जिसमें मुंशी सदासुख लाल, सैय्यद इंशा अल्ला खां, लल्लू लाल तथा सदल मिश्र को भोजपुर प्रदेश का बताया गया है लेकिन भोजपुर जिला स्थापना दिवस पर प्रशासन द्वारा प्रकाशित स्मारिका में केवल सदल मिश्र को ही भोजपुर इलाके का बताया गया है। वह ध्रुवडीहा गांव के थे और आरा के मिश्र टोली में रहते थे। उनका

जन्म 1767 में हुआ था। शुक्ल जी ने सदल मिश्र के जीवन के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। अगर आचार्य शिवपूजन सहाय ने सदल मिश्र की रचनावली बिहार राष्ट्रभाषा परिषद से प्रकाशित नहीं की होती तो सदल मिश्र के बारे में हिंदी साहित्य में विशेष जानकारी नहीं मिलती। शिवपूजन सहाय ने हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक नलिन विलोचन शर्मा को इस रचनावली के संपादन का भार दिया था। नलिन जी आरा में एच.डी. जैन कॉलेज में संस्कृत के प्रोफेसर भी रह चुके थे।

नलिन जी के शब्दों में इस रचनावली की कथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के संस्थापक एवं संचालक आचार्य शिवपूजन सहाय की योजना के अनुसार परिषद के अधिकारियों की आज्ञा से श्री वीरेंद्र नारायण (शिवपूजन सहाय के दामाद) जो जयप्रकाश नारायण के अखबार *जनता* में बेनीपुरी जी के साथ सहायक संपादक थे, ने अपने लंदन प्रवास काल में इंडिया ऑफिस में इसकी (चंद्रावती) और एक चरित अथवा अध्यात्म रामायण की प्रतिलिपि करके लाई थी।

नलिन जी ने यह भी लिखा है कि श्याम सुंदर दास के अनुसार हिंदी के प्रारंभिक लेखकों में पहला स्थान इंशा अल्ला खां, दूसरा सदल मिश्र और तीसरा स्थान लल्लू लाल जी को मिलना चाहिए।

श्याम सुंदर दास ने यह भी लिखा है कि सन् 1901 में कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में संरक्षित हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की जांच करते समय मुझे पंडित सदल मिश्र द्वारा अनुवादित *चंद्रावती* अथवा *नासिकेतोपाख्यान* की एक प्रति प्राप्त हुई। उस प्रति के आधार पर मैंने उसे संपादित कर नागरी प्रचारिणी ग्रंथ माला से प्रकाशित करवाया था।

सदल मिश्र के बारे में बिहार *थ्रू द एजेज* नामक पुस्तक में – संपादक आर.आर. दिवाकर–में कहा गया है कि सामान्य रूप से विचार करने पर संभवतः बिहार का प्रारंभिक आधुनिक गद्य, हिंदी का भी प्रारंभिक गद्य है। हिंदी के चार गद्य लेखकों अर्थात् सदल मिश्र, लल्लू लाल, इंशा अल्ला खां और *सदासुख लाल* में प्रथम यानी सदल मिश्र आरा के थे और प्रायः सर्वसम्मति से उस गद्य शैली के प्रतिष्ठापक थे जो आगे चलकर स्वीकृत हुई। सदल मिश्र तथा लल्लू लाल जी दोनों ही उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में फोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदी के इंस्ट्रक्टर और लेखक थे। द्वितीय यानी लल्लू लाल जी की तुलना में प्रथम (सदल मिश्र) ने अधिक परिमार्जित एवं

सुगठित गद्य लिखा। फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्कालीन अधिकारियों ने इसका महत्त्व नहीं समझा या स्वीकार किया था किंतु बाद की पीढ़ियों ने यह सिद्ध कर दिया कि यह उनकी गलती थी।

रामचंद्र शुक्ल ने भी लिखा है, लल्लू लाल के समान इनकी भाषा में न तो ब्रजभाषा के रूपों जैसी भरमार है और न परंपरागत काव्य भाषा की पदावली का स्थान–स्थान पर समावेश। इन्होंने व्यावहारिक उपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहां तक हो सका, खड़ी बोली का ही व्यवहार किया है।

शुक्ल जी आगे यह भी लिखते हैं कि गद्य की एक साथ परंपरा चलाने वाले उपर्युक्त चार लेखकों ने आधुनिक हिंदी का पूरा–पूरा आभास सदासुख और सदल मिश्र की भाषा में दिखता है।

इसलिए अगर यह कहा जाए कि आज जो हिंदी हम लिखते–बोलते हैं, उसके प्राथमिक गद्य लेखक सदल मिश्र ही थे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

लेकिन अगर सदल मिश्र के भाई के वंशज रघुनंदन मिश्र ने शिवपूजन सहाय को सदल मिश्र के बारे में संस्मरण न सुनाया होता तो हिंदी के इस प्रथम गद्य लेखक के व्यक्तित्व के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती।

नलिन जी ने लिखा है कि आचार्य जी के संस्मरण के रूप में श्री बजरंग वर्मा (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद) को जो कुछ प्राप्त हुआ। उन्होंने उसे आकाशवाणी पटना से एक वार्ता के रूप में प्रकाशित किया और उस वार्ता की एक प्रतिलिपि नलिन जी को दी थी। इस वार्ता से सदल मिश्र के व्यक्तित्व की झलक मिलती है। नलिन जी ने सदल मिश्र की रचनावली की भूमिका में उस वार्ता को इस प्रकार उद्घृत किया है–जो लोग पं. रघुनंदन मिश्र के निवास स्थान जाते थे, उनसे पूछने पर वे अपने दादा जी अर्थात् सदल मिश्र के विषय में सुनी–सुनाई बातें कहानी की तरह कहा करते थे, जैसे पंडित जी (सदल मिश्र) के पहनावे के विषय में उनका कहना था कि वे सर पर बड़ा साफ़ा और घुटने के ऊपर तक धोती पहनते थे–वैसी धोती जिसे कच्छा भी कहते हैं। जनेऊ केवल कुमारी कन्याओं के काते हुए सूत से स्वयं बनाते थे, गले में बराबर पूजा की माला लटकी रहती थी। सोने के समय उसे निकालकर जपते थे। प्रायः जीवन भर स्वपाकी रहे। भोजन में खिचड़ी और पुआ के बड़े शौकीन थे।

नौकर उन्होंने कभी रखा नहीं। जब दूसरों के घर जाते तो नौकरों के मांजने पर भी बरतनों का उपयोग उन्हें दोबारा धोए बिना नहीं करते थे। कम से कम सेर–आध सेर मिट्टी से तो हाथ साफ करते थे। एक लोटकी से ढके हुए एक लोटे से भरा पानी सदा अपने साथ लटकाए फिरते थे। जब कहीं बैठते तो पहले पानी छिड़ककर लोटा रखते और तब बैठते थे। अपना बिस्तर वह स्वयं लगाते थे और उस पर किसी को बैठने नहीं देते थे। सोते समय अपना सोटा अपनी खाट पर ही रखकर सोते। प्रातः काल *ईशावास्योपनिषद* और अध्यात्म रामायण का पाठ करना वे कभी नहीं भूलते थे। पूजा के बाद मैदान में चींटियों को सूजी और शक्कर देना उनका नित्य का नियम था। गाय और कुत्ते उन्हें बहुत प्रिय थे। घर छोटा होने के कारण गाय दूसरे के यहां बंधती थी। गो–सेवा उन्हें इतनी प्रिय थी कि उन्होंने एक गाय भी पाल रखी थी। स्वभाव से वह तो विनम्र थे और बोलते बहुत कम थे। अधिक समय मौन ही रहते थे। बराबर कुछ न कुछ लिखते रहते। मिट्टी की एक छोटी सी दवात और कंडे की कलम उनका साथ कभी नहीं छोड़ती थी।

उस समय कोलकाता में रेल न थी। पं. रघुनंदन मिश्र कहा करते थे कि पंडित जी कई बार तोड़े के साथ गंगा मार्ग से घर आते थे। नाव से सिनहा घाट –आरा से उत्तर गंगा के एक घाट– उतरते थे। पंडित रघुनंदन मिश्र के पिता यानी सदल मिश्र के अनुज बैलगाड़ी और लठैतों के साथ वहां जाते और उन्हें आरा तक लिवा लाते।

सदल मिश्र किस तरह कोलकाता गए और वहां उन्हें कैसे नौकरी मिली, इसका रोचक किस्सा नलिन जी ने सदल मिश्र ग्रंथावली की भूमिका में लिखा है – 'रघुनंदन मिश्र के एक पुत्र, राजा मिश्र, जो 1946 में जीवित थे और आरा में रहते थे, के अनुसार सदल मिश्र संस्कृत के विद्वान थे और कुशल अध्यापक के रूप में प्रसिद्ध थे। धनाभाव के कारण वे पटना गए। वहां पर एक समृद्ध ज़मींदार के आश्रय में रहने लगे और उन्हें पुराण सुनाया करते थे। पुराण वाचन के समय अन्य व्यक्ति भी उपस्थित होने लगे और पटना निवासी कुछ अंग्रेज़ भी आकृष्ट हुए। इनमें से एक व्यक्ति सदल मिश्र के पांडित्य तथा साधु प्रकृति से इतना प्रभावित हुआ कि उन्होंने मिश्र जी को कोलकाता में ईस्ट इंडिया कंपनी की अच्छी वेतनवाली तथा सम्मानपूर्ण नौकरी दिलाने का आश्वासन दिया और उन्हें कोलकाता चलने को निमंत्रित भी किया।

उसी अंग्रेज़ सहृदय के माध्यम से सदल मिश्र गिलक्राइस्ट के संपर्क में आए और उन्हें फोर्ट विलियम कॉलेज में नियुक्ति मिली। वहां प्रायः 25 वर्ष तक कार्य करने के बाद सदल मिश्र कलकत्ता से प्रभूत धनादि–कमोबेश डेढ़ लाख रुपए लेकर बिहार में *सेमरिया* घाट आए। वहां से आरा तक अंग्रेज़ सैनिकों ने उन्हें संरक्षण में पहुंचाया।

नलिन जी ने एच.डी. जैन कॉलेज द्वारा प्रकाशित *ग्रेट मैन ऑफ शाहाबाद* नामक पुस्तक में सदल मिश्र के बारे में प्रकाशित लेख के आधार पर लिखा है जो राजा मिश्र की बातों पर आधारित था। नलिन जी ने लिखा है कि डेढ़ लाख रुपयों की बात विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती है। कम से कम फोर्ट विलियम कॉलेज से तो वेतन, पारिश्रमिक या पुरस्कार के रूप में इतनी रकम मिश्र जी ने कदापि अर्जित न की होगी। फोर्ट विलियम कॉलेज में भाषा मुंशी के रूप में विद्वानों को प्रायः 50 रुपये प्रति माह मिलते थे। श्यामसुंदर दास के अनुसार सदल मिश्र ने सिंही, बच गुल्फा, हसनपुरा का 11,000 में ठीका लिया था और आरा में एक अच्छा खासा मकान भी बनवा लिया था।

सदल मिश्र खेती–बारी में अभिरुचि रखते थे और अधिक समय आरा में रहकर संस्कृत के छात्रों के अध्यापन में लगे रहते थे। वे उदार थे और निर्धन छात्रों के लिये भोजन–व्यवस्था करते तथा उन्हें यथासंभव सहायता पहुंचाते करते थे। ऐसा कहा जाता है कि बाबू कुंवर सिंह ने उन्हें एक बार आरा छोड़कर बाहर जाने से रोका था। 1836 में विलियम फोर्ट कॉलेज टूट गया। सदल मिश्र इससे पूर्व ही घर लौट गए। 1847–48 में 50 वर्ष की उम्र में उनकी मृत्यु हो गई।

सदल मिश्र 1791 में कलकत्ता गए थे। उस समय उनकी उम्र 24–25 वर्ष की रही होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि 24–25 वर्ष तक वह प्रकाण्ड विद्वान बन गए थे। सदल मिश्र की शिक्षा–दीक्षा आरा में कहां हुई, इसकी जानकारी नहीं मिलती है। आरा में पहला सरकारी स्कूल 1787 के आसपास का है। इसका अर्थ यह हुआ कि सदल मिश्र ने क्या स्वाध्याय से ज्ञान अर्जित किया था या किसी अन्य संस्था या स्कूल में पढ़ाई की थी। यह सच है कि उस ज़माने में लोग स्वाध्याय से भी बहुत ज्ञान प्राप्त करते थे। सदल मिश्र की यह कहानी बताती है कि आरा 19वीं सदी में ही शिक्षा की दृष्टि से एक जागरूक शहर रहा होगा तभी तो सदल मिश्र जैसा एक व्यक्ति वहां रहता था।

सदल मिश्र वीर कुंवर सिंह से बड़े थे। 1857 की क्रांति से करीब दस साल पहले उनकी मृत्यु हो चुकी थी। 1854 में भारत में रेलवे लाइन बिछी। उस समय शाहाबाद के इलाके में आवागमन का कोई साधन नहीं था। वह स्टीमर से ही पटना या कलकत्ता आते–जाते रहे होंगे। उस ज़माने में गालिब भी कलकत्ता गए थे। कहा जाता है कि गालिब घोड़े पर सवार होकर ही कलकत्ता गए थे।

चूंकि उस दौर का कोई प्रामाणिक इतिहास सदल मिश्र के जीवन को लेकर नहीं है, इसलिए बातों के साथ बहुत सी बातें दावे के साथ नहीं कही जा सकती। उनके बारे में इन मौखिक कथाओं से अनुमान और अंदाज़ा ही लगाया जा सकता है। सदल मिश्र की कहानी आरा शहर के इतिहास की एक रोचक कहानी है लेकिन दुर्भाग्य से आरा शहर के लोगों को यह कहानी मालूम नहीं है।

आरा शहर में सदल मिश्र की कोई प्रतिमा या प्रतीक चिह्न या सड़क का नाम भी नहीं है और न ही कोई स्कूल या कॉलेज। यह जानकर अत्यंत क्षोभ भी हुआ कि आरा के कॉलेजों तथा वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय में सदल मिश्र पर कोई शोध कार्य भी नहीं हुआ और न ही उनकी स्मृति में कोई समारोह आदि होता है। आरा की जनता और प्रशासन उन्हें लेकर विस्मृत है। सदल मिश्र के नाम पर कोई पुरस्कार या व्याख्यान भी नहीं होता। हिंदी का यह प्रथम गद्य लेखक अपने ही शहर में अलक्षित रह गया पर आरा शहर का एक अविभाज्य अंग तथा इतिहास ज़रूर बन गया। जब तक हिंदी है, तब तक सदल मिश्र जीवित रहेंगे।

महानायक वीर कुंवर सिंह

1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के महानायक वीर कुंवर सिंह भोजपुर जिले के किवंदन्ती पुरुष हैं। उनकी साहस, वीरता और सदाशयता के किस्से अब लोक कथाओं में तब्दील हो गए हैं। भोजपुर जिला ही नहीं बल्कि बिहार का इतिहास और पूरे राष्ट्र का इतिहास बगैर वीर कुंवर सिंह के लिखा ही नहीं जा सकता है। आरा शहर की गली–गली में उनके शौर्य और बलिदान की कथाएं विद्यमान हैं। वीर कुंवर सिंह के त्याग पर हिंदी तथा भोजपुरी में अनेक कविताएं और गीत भी लिखे गए हैं। सुप्रसिद्ध नाटककार जगदीश चंद्र माथुर ने उन पर एक एकांकी भी लिखा है। शिवपूजन सहाय के गुरु पंडित ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने भी सिपाही विद्रोह नामक पुस्तक में वीर कुंवर सिंह की चर्चा की है जिसमें ऐसी बातें लिखी गई थीं जो भोजपुर जिले के लोग नहीं जानते थे। लेकिन वह पुस्तक मुझे आज तक नहीं मिली।

भारत में आरंभिक इतिहास लेखन अंग्रेजों ने किया। जिसकी वजह से शुरू में तो वीर कुंवर सिंह के साथ न्याय नहीं हुआ। 1857 के संग्राम को केवल

वीर कुंवर सिंह

सिपाही विद्रोह तथा राजाओं का विद्रोह कहकर उसके महत्त्व को कम आंकने की कोशिश हुई जिसकी वजह से वीर कुंवर सिंह के योगदान का पूरी तरह मूल्यांकन नहीं हो सका। हिंदी में 1921 में ही मथुरा प्रसाद दीक्षित ने वीर कुंवर सिंह पर पुस्तक लिखी थी जिसके लिए एक विस्तृत परिशिष्ट बाबू शिवपूजन सहाय ने तैयार की थी जिसमें से कई बातें इतिहास की पुस्तकों से नहीं मिलती हैं। शिवपूजन बाबू ने वीर कुंवर सिंह के राजदरबार के बचे कुछ गिने–चुने लोगों की स्मृतियों के आधार पर भी कई बातें एक परिशिष्ट में संकलित की थी। बाद में शिवपूजन जी ने वीर कुंवर सिंह की एक छात्रोपयोगी जीवनी भी हिंदी में लिखी थी जो उनके जीवन काल में प्रकाशित हो गई थी। प्रसिद्ध इतिहासकार कालीकिंकर दत्त ने जब इतिहास लिखा तो उसमें वीर कुंवर सिंह के महत्व को रेखांकित किया किंतु अभी भी वीर कुंवर सिंह पर हिंदी और अंग्रेजी में अच्छी तथा बड़ी किताब आनी बाकी है। वरिष्ठ पत्रकार श्रीकांत की बिहार में प्रथम स्वाधीनता संग्राम पर पुस्तक इस कमी को काफी हद तक पूरा करती है लेकिन वीर कुंवर सिंह के व्यक्तित्व और उनके योगदान को देखते हुए उनके साथ लेखकीय न्याय अभी तक नहीं हुआ है।

1857 के स्वाधीनता संग्राम के 150 वर्ष पूरे होने पर हिंदी और अंग्रेजी में एक नया विमर्श शुरू हुआ और उससे यह फ़ायदा हुआ कि वीर कुंवर सिंह पर कुछ महत्त्वपूर्ण किताबें आ गईं। प्रकाशन विभाग और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने भी उन पर पुस्तकें प्रकाशित कीं।

वीर कुंवर सिंह लोक मानस में पहले से ही स्थापित हैं। बिहार में उनसे बड़ा कोई नायक या महानायक नहीं है।

इस पुस्तक में वीर कुंवर सिंह के इतिहास को पूरी तरह दोहराना, उद्देश्य नहीं है लेकिन शहर की प्राणवायु की तरह प्रवाहित वीर कुंवर सिंह की स्मृतियों को याद करने की ज़रूरत अवश्य है।

शहर में वीर कुंवर सिंह के नाम पर 1992 में एक विश्वविद्यालय और एक पार्क जरूर बन गया है जिसमें उनकी प्रतिमा लगी हुई ज़रूर है। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह इस प्रतिमा का उद्घाटन करने आरा आए थे। इसके अलावा शहर में वीर कुंवर सिंह को लेकर अनेक प्रतीक स्थल भी हैं। बाबू बाजार में कुंवर सिंह की एक कोठी भी थी। आरा हाउस भी उनका एक अमर प्रतीक है। शहर के लोग यह भी कहते हैं कि वीर

कुंवर सिंह ने अपने गांव जगदीशपुर से लेकर आरा के महाराजा कॉलेज के पास तक एक सुरंग बनाई थी। इस सुरंग का मुख्य द्वार बरसों से बंद है। रीगल होटल के कर्मचारियों ने यह दावा किया कि वह बचपन में इस सुरंग के भीतर गए भी थे लेकिन ऐतिहासिक रूप से मुझे इस सुरंग के बारे में कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला और शाहाबाद गजेटियर में भी इसका कोई ज़िक्र नहीं है। संभवतः किसी इतिहासकार ने भी इस सुरंग के बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं लिखा है। आरा शहर में धरमन टोला और करमन टोला नामक दो पुराने मुहल्ले हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि वीर कुंवर सिंह की ये प्रेमिकाएं या उप–पत्नियां थीं जिनके नाम पर ये टोले बने हैं। इस तरह आरा शहर में इस महान सेनानी की अनेक कथाएं प्रचलित हैं और हर आरावासी बहुत तल्लीनता के साथ ये किस्से सुनता है और गर्व का भी अनुभव करता है। भोजपुरवासियों के मन में आज तक यह भाव व्याप्त है, इस वजह से वीर कुंवर सिंह जैसे योद्धा के माध्यम से उत्तर भारत के इलाके के और उनमें राष्ट्रप्रेम, साहस तथा आत्म कूट–कूट कर भरा है।

आधुनिक भारत के इतिहास में वीर कुंवर सिंह, झांसी की रानी, नाना फड़नवीस, तात्या टोपे, बहादुर शाह जफर, महात्मा गांधी, भगत सिंह, जयप्रकाश नारायण जैसे अनेक महापुरुष अपने साहस, त्याग और बलिदान के कारण लोक मानस में रच बस गए हैं।

आरा शहर में दिलचस्पी रखने वाला हर व्यक्ति वीर कुंवर सिंह के बारे में थोड़ा बहुत ज़रूर जानता है, भले ही उसने इतिहास की कोई पुस्तक न पढ़ी हो। इतिहास की पुस्तकों में भले ही वीर कुंवर सिंह को लेकर तिथिवार घटनाएं न मिल पाएं लेकिन जनमानस में उनके युद्ध के किस्से आज भी मौजूद हैं। किस तरह 1857 के स्वाधीनता संग्राम की शुरुआत मंगल पांडेय के विद्रोह से शुरू हुई और उसके बाद दानापुर तथा रामगढ़ के भारतीय सैनिकों ने भी विद्रोह खड़ा कर दिया।

पंडित सुंदरलाल ने लिखा है कि 25 जुलाई 1857 को दानापुर कैंट में जब विद्रोह किया तो वे जगदीशपुर की तरफ बढ़े। उस समय 80 वर्ष की आयु में वीर कुंवर सिंह जगदीशपुर के लोकप्रिय राजा थे। वह सैनिकों का नेतृत्व करते हुए आरा पहुंचे तथा आरा जेल से न केवल कैदियों को छुड़ाया बल्कि अंग्रेज़ अफसरों को मार भगाया और अंग्रेज़ों के खज़ाने पर कब्ज़ा कर लिया।

इसके बाद कुंवर सिंह ने आरा के छोटे से किले को भी घेर लिया। किले के भीतर कुछ अंग्रेज और कुछ सिख सिपाही थे। किले में पानी की कमी हो गई थी। कहा जाता है कि किले के अंदर सिखों ने अंग्रेज़ों की विपत्ति को देखकर एक घंटे के भीतर एक कुआं खोद दिया। कुंवर सिंह ने किले के भीतर छिपे सिपाहियों से कहा कि अगर वे समर्पण कर दें तो उनकी जान बक्श दी जाएगी पर सिपाहियों ने ऐसा नहीं किया। तीन दिनों तक संग्राम जारी रहा। इस बीच 29 जुलाई दानापुर के कप्तान डनबर के नेतृत्व में करीब 300 गोरे सिपाही और 100 सिख सिपाही की अंग्रेज़ फौज़ की मदद के लिए आरा रवाना हुए। आरा के निकट आम बाग में छिपी कुंवर सिंह की सेना ने रात में डनबर की फौज पर अचानक हमला कर गोलियां बरसानी शुरू कर दीं। सुबह तक 50 सिपाही छोड़कर सभी फौजी मारे गए। इस हमले कप्तान डनबर भी मारा गया।

इसके बाद मेजर आयर एक बड़ी सेना लेकर किले में छिपे अंग्रेज़ों की सहायता के लिए आया। वह अपने साथ तोप भी लाया था। दो अगस्त को बीबीगंज के निकट कुंवर सिंह और मेजर आयर की सेना के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में वीर कुंवर सिंह की सेना को पीछे हटना पड़ा और आठ दिन के बाद अंग्रेज़ों ने आरा शहर तथा किले पर फिर से कब्ज़ा कर लिया। सुंदरलाल ने लिखा है कि जब कुंवर सिंह जगदीशपुर लौट आए तो मेजर आयर की फौज ने वहां तक उनका पीछा किया। कई दिनों तक दोनों पक्षों के बीच युद्ध होता रहा और 14 अगस्त को अंग्रेजों ने जगदीशपुर किले पर कब्जा कर लिया। इसके बाद वीर कुंवर सिंह ने करीब आठ महीने तक उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ के इलाके में कई बार अंग्रेज सैनिकों को शिकस्त दी और अंत में वह गाजीपुर होते हुए अपने गांव जगदीशपुर की तरफ़ लौटे। रास्ते में गंगा पार करने के दौरान कश्ती पर सवार वीर कुंवर सिंह की दाहिनी कलाई में अंग्रेजी सेना के सिपाही की गोली आकर लगी। उन्होंने शरीर में विष फैलने के डर से बाएं हाथ से तलवार की मदद से अपने दाहिने हाथ को काटकर गंगा नदी में फेंक दिया और घाव पर कपड़ा लपेटकर गंगा को पार किया। 22 अप्रैल, 1858 को वीर कुंवर सिंह और ब्रिटिश फौज के बीच जगदीशपुर के पास भयंकर लड़ाई हुई जिसमें 23 अप्रैल को उन्होंने फिर जगदीशपुर पर कब्जा कर लिया लेकिन घायल कुंवर सिंह का तीन दिन बाद ही निधन हो गया।

वीर कुंवर सिंह के बाद उनके छोटे भाई अमर सिंह गद्दी पर बैठे। वह भी कुंवर सिंह की तरह ही वीर और साहसी थे। उन्होंने फिर आरा पर चढ़ाई की और अंग्रेजों को परास्त किया। अंग्रेजों ने 17 अक्टूबर को जगदीशपुर को घेर लिया लेकिन अमर सिंह अंग्रेजों के हाथ नहीं आए और कैमूर की पहाड़ियों में प्रवेश कर लिया। उसके बाद उनका पता नहीं चला। वह नेपाल तक युद्ध लड़ते रहे।

जगदीशपुर के लोगों के साहस तथा बलिदान की कहानी यहीं खत्म नहीं हो जाती है। जगदीशपुर किले की स्त्रियों ने अंग्रेजों के हाथ पड़ना गंवारा न समझा और किले की 150 स्त्रियों ने खुद को तोपों के सामने खड़ा करके स्वयं पलीता लगाकर अपनी जीवन–लीला समाप्त कर ली। यह जौहर भारतीय इतिहास की अमर घटना है। इससे अंदाज़ लगाया जा सकता है कि देशप्रेम की भावना वहां के लोगों में कितनी गहरी थी। 1857 के स्वाधीनता संग्राम का इतना लोमहर्षक युद्ध कहीं नहीं लड़ा गया जिसमें वीर कुंवर सिंह और अमर सिंह ने अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा दिए। लेकिन यह अत्यंत दुख की बात है कि इस महान सेनानी की स्मृति को जिस तरह सुरक्षित रखना चाहिए था, आज़ादी के बाद उसे हम सुरक्षित नहीं रख पाए। जगदीशपुर किला हमारी आज़ादी का राष्ट्रीय स्मारक जरूर है। इस किले ने पूरे भोजपुर इलाके में लोगों में स्वाधीनता की भावना का संचार करने में अविस्मरणीय भूमिका निभाई, जिस का असर आरा शहर पर आज भी देखा जा सकता है।

महात्मा गांधी जब आरा आए

1857 की क्रांति के बाद भी देश को आज़ाद कराने के लिए भारतीयों का संघर्ष जारी रहा। कांग्रेस की स्थापना के बाद यह संघर्ष अधिक तेज़ हो गया। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चंद्र पाल ने इस संघर्ष को धार दिया। महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद भारतीय स्वाधीनता संग्राम एक नए चरण में पहुंच गया था। बिहार के चंपारण से ही गांधी जी का आंदोलन शुरू हुआ। 1917 में गांधीजी जब पटना प्लेटफार्म पर पहुंचे तो उस समय मौलाना मज़रुल हक और ब्रजकिशोर बाबू जैसे ही नेता थे। तब राजेंद्र बाबू का उस तरह प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। उस समय राजकुमार शुक्ल को गांधीजी जानते थे। बिहार में चंपारण आंदोलन की सफलता से एक नया जोश एवं उमंग का भाव पूरे राज्य में फैला तथा राज्य के लोगों में स्वाधीनता की चेतना भी जागी। उसके बाद गांधीजी कई बार बिहार आए। लेकिन इतिहास का विद्यार्थी होने के बावजूद मुझे यह जानकारी नहीं थी कि आरा में महात्मा गांधी तीन बार आए थे। आरा के कई पुराने लोगों से पूछा तो वे ठीक–ठीक यह जानकारी नहीं दे सके। गांधी वांग्मय में केवल एक बार आरा आने की जानकारी मिलती है लेकिन आरा के पुराभिलेखापाल डॉ. जवाहरलाल वर्मा ने लिखा है कि गांधी जी तीन बार आरा आए थे। सुना था गांधी जी का आरा आगमन ऐतिहासिक घटना थी। यही कारण है कि आरा के बुजुर्ग लोगों ने बड़े गर्व और उत्साह के साथ सुनाया कि यहां तो गांधी जी भी आए थे। दरअसल गांधी जी उन दिनों जहां–जहां जाते थे, वहां वह अपनी अमिट छाप छोड़ जाते थे और वहां के लोग वर्षों तक उनके आगमन को याद करते थे। गांधी जी की हर यात्रा उस शहर के लोगों के जनमानस का हिस्सा बन चुकी थी। आरा के पुराने लोगों के मन में यह अमिट छाप अब भी बरकरार है, पर नई पीढ़ी को इसकी जानकारी नहीं।

हर शहर का एक संक्षिप्त इतिहास वहां के स्कूलों तथा कॉलेजों में पढ़ाया जाए तो कम से कम नई पीढ़ी अपने शहर की ऐतिहासिक घटनाओं से वाकिफ तो हो सकेगी। लेकिन इसके अभाव में आज की नई पीढ़ी अपने इतिहास से वंचित हो गई है। आरा शहर के कई नवयुवकों से हमने गांधीजी

आगमन के बारे में पूछा तो उन्होंने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। हालांकि इसमें उन नवयुवकों का कोई दोष नहीं है। दोष हमारी शिक्षा पद्धति का है। बहरहाल डॉ. वर्मा के अनुसार गांधी जी शनिवार 4 दिसंबर, 1920 को पटना से पैसेंजर ट्रेन से दिन के एक बजे आरा पहुंचे। उनके साथ शौकत अली, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद और स्वामी सत्यदेव भी थे। आरा में गांधीजी के आगमन के अवसर पर शाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष विंध्यवासिनी सहाय, डॉ. कैप्टन, अरुणजय सहाय वर्मा, चौधरी करामत हुसैन, मंदरीदास तथा कुनकु हलवाई उर्फ नंदलाल गुप्त ने अच्छा प्रबंध किया। गांधीजी उसी दिन डाउन पंजाब मेल से पटना वापस लौट गए। गांधीजी के आह्वान पर हर गोविंद मिश्र, हरनंदन सिंह, सरदार हरिहर सिंह, रघुवंश नारायण सिंह, सरयू मिश्र इत्यादि नवयुवकों ने आंग्ल शिक्षण संस्थानों का बहिष्कार किया और स्वदेशी भावना के प्रचार–प्रसार का भी शुभारंभ हुआ।

गांधीजी के असहयोग आंदोलन का असर काफ़ी रहा। प्रेमचंद ने भी सरकारी स्कूल से त्यागपत्र दे दिया था। शिवपूजन सहाय ने लिखा है कि उन्होंने भी सरकारी स्कूल से इस्तीफ़ा दे दिया था। दूसरी बार गांधीजी 28 फरवरी 1922 को आरा आए। उनके साथ उनकी पत्नी कस्तूरबा गांधी, पुत्र देवदास गांधी और राजेंद्र प्रसाद थे। इस बार आरा में गांधी जी की आम सभा आयोजित की गई। गांधीजी ने उसमें खादी का प्रचार, हिंदू–मुसलिम एकता तथा हरिजनोद्धार जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों को बढ़ाने पर ज़ोर दिया। अगले दिन हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने जिला बोर्ड के तत्वावधान में गांधीजी का अभिनंदन किया। उन्होंने खुद अभिनंदनपत्र लिखा था। वह 1921 में शाहाबाद जिला परिषद या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्रथम भारतीय चेयरमैन नियुक्त किए गए थे। तब अंग्रेजों ने गांधीजी का अभिनंदन न करने के लिए राजाजी ने विरोध किया तथा अपने राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने पद से इस्तीफा दे दिया था। गांधी जी चंदाबाई के स्कूल भी गए थे और वहां रजिस्टर में उनका नाम भी अंकित है। लेकिन आरा की यात्रा को लेकर और कोई विशेष विवरण नहीं मिलता है। किसी लेखक ने भी उसका विधिवत् इतिहास अपनी डायरी में या आलेख में दर्ज नहीं किया है।

संभवतः उन दिनों, अखबारों में इस बारे में कोई रिपोर्ट छपी हो लेकिन आज यह रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

डॉ. वर्मा के अनुसार तीसरी और अंतिम बार गांधी जी 21 अप्रैल, 1934 को आरा आए थे। वह डॉ. राजेंद्र प्रसाद आदि के साथ सुबह की ट्रेन से पटना से चले थे। बाबू राधामोहन सिंह विधानपरिषद के निमंत्रण पर गांधी जी सबसे पहले उनके गांव जमीरा गए थे और वहां एक मंदिर में श्रोताओं को संबोधित किया था। वहां से होते हुए वह कार से आरा आए। गांधी जी के साथ ठक्कर बापा, काका कालेलकर और जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावती भी साथ को गांधी जी के साथ जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावती देवी के साथ मीरा बहन भी आई थीं।

रमना मैदान में गांधी जी की एक सभा आयोजित हुई थी। राधामोहन सिंह, नगर पालिका के चेयरमैन शराफ़त हुसैन, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जैसे सदस्यों की एक प्रबंध समिति भी बनी थी। मंच पर श्री हुसैन तथा राजा राधिकारमण और कुछ विदेशी महिलाएं भी मौजूद थीं। गांधी जी की इस सभा में दस हजार लोगों की भीड़ थी और जिले के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण नेता मौजूद थे। स्थानीय हरिजन स्कूल के तीन छात्रों ने गांधी जी को माल्यार्पण किया था। शराफ़त हुसैन ने गांधी जी के बारे में खादी पर लिखा प्रशस्तिपत्र पढ़ा था। तब बाबू जगजीवनराम हरिजनोद्धार कार्यक्रम में गांधी जी के साथ–साथ घूमते रहे। सभा के बाद गांधी जी ने मौला बाग़ स्थित प्रमुख व्यवसायी वंशरोपण राम चौधरी के गार्डन हाउस में विश्राम किया। फिर दोपहर से पहले वह आरा से चले गए। शाहाबाद गजेटियर के अनुसार खिलाफ़त आंदोलन के दौरान गांधी जी चार बाग सासाराम भी गए थे। लेकिन उनकी इस यात्रा की जानकारी नहीं मिल सकी।

गांधी जी की इन तीन यात्राओं ने आरा की जनता पर काफ़ी प्रभाव डाला और स्वतंत्रता की चेतना बलवती हुई जिसके कारण ही 1942 के आंदोलन में भी आरा एवं भोजपुर के लोगों ने भी बढ़–चढ़कर भाग लिया और अपनी कुर्बानियां दीं।

1942 का आंदोलन और आरा

आरा शहर में गांधीजी के आने के बाद जो राष्ट्रीय चेतना शहरवासियों में फैली उसका असर भारत छोड़ो आंदोलन पर भी पड़ा। 1942 का यह आंदोलन देश का सबसे बड़ा जन आंदोलन था। इसकी आग गांव–गांव तक फैल गई थी और ग्रामीण जनता ने भी अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया था। आरा के स्वतंत्रता सेनानी मेजर धीरेंद्र बहादुर सिंह के अनुसार पूरे बिहार में 51,036 लोगों की गिरफ्तारी हुई थी और पुलिस की गोली से 470 व्यक्ति मारे गए थे। 871 गंभीर रूप से घायल हुए थे। विमान द्वारा बरसाई गई गोलियों से 40 लोग मारे गए थे। देश भर में करीब 15 हजार लोगों को अंग्रेजों ने मरवाया था।

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह जन आंदोलन कितना विशाल और कितना फैला हुआ था। इसकी चिंगारी देश के लगभग हर हिस्से में फैल गई थी। आरा में 1942 के आंदोलन की आधारभूमि तैयार करने में महात्मा गांधी, राजेंद्र प्रसाद, मौलाना आजाद, शौकत अली, प्रभावती देवी, मदन मोहन मालवीय जैसे अनेक नेताओं और नेत्रियों ने पहले ही तैयारी कर ली थी। उनकी सभाओं और यात्राओं से यहां की जनता में आज़ादी की भावना का संचार हो गया था। 1857 की लड़ाई में वीर कुंवर सिंह की अविस्मरणीय भूमिका ने पहले ही भोजपुर प्रदेश की जनता में स्वतंत्रता की आकांक्षा के बीज बो दिए थे। यही कारण है कि 1942 के आंदोलन में यहां/आस–पास के गांवों के लोग गए थे। आरा शहर में शहीद चौक के पास शहीद भवन में उन अमर शहीदों की एक लंबी सूची दीवार पर अंकित है, जिन्होंने इस आंदोलन में बलिदान दिया था। इनमें कई महिलाएं एवं पिछड़ी जाति के गरीब किसान भी थे। इससे पता चलता है कि समाज के वंचित लोगों में बलिदान की भावना तीव्र थी और इस जन आंदोलन में जन–जन की भागीदारी थी। यही कारण है कि अंग्रेज 1942 के आंदोलन से भयभीत हो गए थे और उन्हें यह महसूस होने लगा था कि वे भारत पर अधिक दिनों तक राज नहीं कर सकते। शायद यही वजह है कि 1942 की क्रांति के पांच वर्ष बाद ही अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाने पर राज़ी हो गए।

शाहाबाद गजेटियर के अनुसार 1942 की क्रांति में कुछ गांव अंग्रेजी शासन से पूरी तरह आज़ाद भी हो गए थे। इस क्रांति में जगजीवन राम, सरदार हरिहर सिंह, अंबिकाशरण सिंह, रामानंद तिवारी, जगत नारायण लाल जैसे अनेक और नेताओं ने जेल भी गए और उन्होंने इस आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया।

मेजर धीरेंद्र बहादुर सिंह के अनुसार सरदार हरिहर सिंह के तीनों लड़के भी जेल गए थे। जगतनारायण लाल की पत्नी भी उनके साथ जेल गई थीं। फुलेना ठाकुर और उनकी पत्नी भी जेल गई थीं। सत्य नारायण जी भी जेल गए और उनके भाई को अंग्रेजों ने गोली मार दी थी।

अंबिकाशरण अखिल भारतीय छात्र कांग्रेस के नेता थे जो जेल से ही फ़रार हो गए थे। आरा कांग्रेस के अध्यक्ष बहादुर प्रसाद भी कई बार जेल गए थे। सूचनाथ चौबे को काला पानी की सजा देकर अंडमान भेज दिया गया था। 1942 की क्रांति का मुख्य केंद्र लसाढी गांव था जो कि आरा से 32 किलोमीटर की दूरी पर है। 15 सितंबर 1942 को अंग्रेज़ों ने उस गांव पर धावा बोल दिया जिसका डटकर मुकाबला गांव की जनता ने किया। इस गोलीबारी में 12 लोग शहीद हुए जिसमें अकली देवी नाम की एक महिला भी थी।

1942 के आंदोलन के दौरान पटना सचिवालय के पास फायरिंग हुई तो आरा और उसके आस–पास की जनता ने ज़बरदस्त रोष व्यक्त किया। बिहिया में अंग्रेज़ों ने तीन लोगों को शहीद कर दिया। यहां की फूलकुमारी देवी के नेतृत्व में नौजवानों ने उग्र आंदोलन छेड़ दिया। बिहिया पुलिस चौकी हथियारों सहित लूट ली गई, डाकघर जला दिया गया और रेलवे सहित अनेक तारघर जला दिए गए। फूलकुमारी देवी को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। वह जेल से छूटीं तो उन्होंने स्थानीय एस.डी.ओ. की कायरता को देखकर प्रतिवाद स्वरूप उन्हें चूड़ी पहनाने का प्रयत्न किया और इस दौरान वह फिर से गिरफ्तार कर ली गईं। उन्होंने जेल में अनेक तरह की प्रताड़ना भी सही जिसके कारण जेल में ही अंतिम सांस लेनी पड़ी।

16 अगस्त, 1942 को आरा के अहिरपुरवा मुहल्ले में घुड़सवार पुलिस द्वारा छापामारी की गई। इस दौरान पुलिस ने घरों में घुसकर अत्याचार किया जिसका विरोध घूरफेकन देवी ने किया और वह पुलिस की गोली से शहीद हुईं।

आरा शहर में स्वतंत्रता सेनानियों ने लगातार धरना प्रदर्शन जारी रखा। इन क्रांतिकारियों ने आरा कलेक्टेरियट पर तिरंगा फहराने का निर्णय लिया। 28 सितंबर को धोड़ादेवी गांव के कवि कैलाश के नेतृत्व में युवकों ने कलेक्टेरियट पर सत्याग्रह शुरु कर दिया। इन सत्याग्रहियों ने जब कलेक्टेरियट परिसर में तिरंगा फहराया तो पुलिस ने उनकी जमकर पिटाई की। कवि कैलाश को पकड़कर पत्थरों से उन्हें मारा गया, फिर घोड़े से बांधकर उन्हें सड़कों पर घसीटा गया। इतना ही नहीं, उन पर खौलता पानी भी डाला गया। लेकिन कवि कैलाश ने उफ़ तक नहीं की। वह महात्मा गांधी की जय और भारत माता की जय के नारे लगाते हुए शहीद हो गए। वीर कुंवर सिंह के बाद दूसरे स्वतंत्रता सेनानी कवि कैलाश ही हैं जिनकी बहादुरी के किस्से शहर में प्रचलित हैं। उनकी एक प्रतिमा आरा शहर में लगी है पर इस शहर से कवि कैलाश को जो सम्मान मिलना चाहिए था, वह आजतक नहीं मिला।

नवजागरण का केंद्र

भारतेंदु काल और द्विवेदी युग में हिंदी नवजागरण की जो चेतना फैली, उसकी एक झलक आरा शहर में भी दिखाई देती है। भारतेंदु के दो मित्र बाबू शिवनंदन सहाय और यशोदानंद आरा शहर के ही थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की तर्ज पर आरा नागरी प्रचारिणी सभा भी खुली। बिहार के किसी अन्य शहर में इस तरह सभा की कोई अन्य शाखा नहीं खुली। पटना, मुजफ्फरपुर और लहेरिया सराय ज़रूर साहित्य के अन्य केंद्र थे। पटना में खड़ग विलास प्रेस ने ज़रूर एक ऐतिहासिक भूमिका निभाई। जिस तरह लखनऊ के नवल किशोर प्रेस ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, उसी तरह खड्ग विलास प्रेस ने भी। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने तो खड्ग विलास प्रेस पर एक पुस्तक ही प्रकाशित की। शायद ही हिंदी में किसी प्रेस की इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका पर कोई पुस्तक प्रकाशित हुई हो। आरा पहले ही सदल मिश्र, बाबू वीर कुंवर सिंह जैसी शख्सियतों से बिहार में अपनी पहचान कायम कर चुका था। बीसवीं सदी के आरंभ में इस इलाके के कई महत्त्वपूर्ण राजनेताओं, लेखकों एवं स्वतंत्रता सेनानियों ने इस शहर को विशिष्ट पहचान दी। इनमें से कई का जन्म आरा शहर में हुआ तो कई इस शहर में रहकर पले–बढ़े और बाद में कहीं और चले गए पर उनका नाता इस शहर से बना रहा, भले ही वह जीविकोपार्जन करने के लिए किसी दूसरे शहर में नौकरी करने गए हों। कई लोगों का जन्म आरा के आस–पास के गांव में हुआ और वे इस इलाके की पहचान बन गए।

संविधान सभा के अध्यक्ष सच्चिदानंद सिन्हा का पैतृक गांव भोजपुर का मुरार था लेकिन वे आरा में ही जन्मे, स्कूली पढ़ाई की, फिर बाद में पटना में रहने लगा। सर जस्टिस ज्वाला प्रसाद जो पटना उच्च न्यायालय के पहले न्यायाधीश थे, उन्होंने आरा शहर में कचहरी में जज के पद से शुरुआत की थी। ये लोग उस ज़माने की बड़ी हस्तियां थे।

बाबू शिवनंदन सहाय, रामदहिन मिश्र, सकल नारायण शर्मा, ब्रजवल्लभजी, देवेंद्र कुमार जैन, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, बनारसी प्रसाद भोजपुरी जैसे लोग भी इसी शहर में रहे। शिवपूजन सहाय, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का जन्म भले ही आरा शहर में न हुआ हो पर उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण समय इसी

आरा शहर में गुज़रा। वे यहां काम भी करते रहे और यहां के साहित्यिक समारोहों में बाद में भी आते–जाते रहे। इनके बगैर भी इस शहर की कल्पना नहीं की जा सकती है। जैनेंद्र किशोर जैसे महत्त्वपूर्ण नाटककार और लेखक भी उसी दौर में आरा में हुए, जिनकी घोर उपेक्षा हिंदी साहित्य के इतिहास में हुई। श्याम मोहन अस्थाना और लल्लनजी के बगैर इस शहर के रंगमंच और कला के इतिहास को नहीं जाना जा सकता। हर प्रसाद जैन और महंथ गिरी तथा चंदाबाई ने शिक्षा के क्षेत्र में जो योगदान आरा शहर को दिया, वह अविस्मरणीय है। बाबू जगजीवन, राम सुभग सिंह, बलिराम भगत, सुमित्रा देवी जैसे राजनीतिज्ञों ने इस शहर को एक राष्ट्रीय पहचान दी।

इस शहर को बौद्धिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक संस्कार देने में इन विभूतियों का योगदान है। इन लोगों की गतिविधियों, कृतियों और अवदान से ही शहर के चरित्र तथा संस्कार को समझा जा सकता है। इतनी समृद्ध परंपरा बिहार में शायद ही किसी अन्य शहर की रही हो। फिर भी इस शहर को अकादमिक जगत में गंभीरता से नहीं लिया गया और इसे एक तरह से उपेक्षित ही रखा गया। यह आरा शहर के लोगों तथा राज्य के नेतृत्व को भी सोचना चाहिए। आगे के अध्यायों में हम इस शहर के विभिन्न पहलुओं और विशेषताओं की चर्चा करेंगे जिनसे आरा शहर का चेहरा मुकम्मल होता है।

शिक्षा की बुनियाद

कहा जाता है कि तुलसीदास रघुनाथपुर के थे और वाणभट्ट सोन नदी के किनारे बसे गांव प्रीतिकुता के थे। शायद इसलिए भोजपुर इलाके में पठन–पाठन और शिक्षा को लेकर एक तरह की चेतना व्याप्त थी, भले ही तब शैक्षणिक संस्थान नहीं थे और औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी।

तुर्क, अफ़गान एवं मुगलकाल में मकतब और मदरसों में ही शिक्षा की व्यवस्था थी। 1812–13 में बुकानिन ने भी लिखा है कि तब शिक्षा के संस्थान नहीं थे लेकिन मौलवी बच्चों को पढ़ाते थे। तब स्त्रियों की पढ़ाई लिखाई अच्छी नहीं मानी जाती थी पर स्त्रियां भी स्वाध्याय करती थीं। बुकानिन की पुस्तक से पता चलता है कि उस ज़माने में तुलसीदास की रामायण बहुत लोकप्रिय थी। 1856–57 में इलाके में सरकारी सहायता से चलने वाले आठ स्कूल थे जो 1870–71 में तेरह हो गए और छात्रों की संख्या भी 354 से बढ़कर 589 हो गई थी।

आरा का सबसे पुराना विद्यालय

शाहाबाद गजेटियर के अनुसार 1881 में 760 पुरुष तथा 20 महिलाएं साक्षर थीं जो 1931 में बढ़कर क्रमशः 4010 तथा 276 हो गए। लेकिन 1941 से 1961 के बीच साक्षरता तेज़ी से बढ़ी और 281,555 से बढ़कर 7,00,765 साक्षर हो गए। लेकिन स्त्रियों की संख्या उसमें भी बहुत कम थी।

1910–11 तक पूरे शाहाबाद जिले में लड़कियों के लिए दो प्राइमरी स्कूल थे और चौदह अपर प्राइमरी स्कूल थे। 1920–22 में लोअर प्राइमरी स्कूल की संख्या बढ़कर 66 हो गई लेकिन तब अपर प्राइमरी स्कूल घटकर दो रह गए। 1955–56 तक आते–आते प्राइमरी स्कूल 282 हो गए यानी आज़ादी के बाद इनकी संख्या में तेज़ी से वृद्धि हुई।

आरा शहर में लड़कियों के लिए स्कूल खोलने का श्रेय पंडिता चंदाबाई को जाता है जिन्होंने अनाथ महिलाओं तथा विधवाओं के लिए 1921 में जैनबाला विश्राम खोला था। इसमें हिंदी और संस्कृत की पढ़ाई होती थी। खुद चंदाबाई पालकी में बैठकर पाठशाला जाती थीं और स्त्रियों को पढ़ाती थीं क्योंकि तब समाज में पर्दा की प्रथा थी। स्त्रियां खुले रूप में कहीं आ जा नहीं सकती थीं।

1934 में उन्होंने जैन बाला विश्राम स्कूल भी खोला जहां आस–पास के गांव की लड़कियां भी पढ़ने आती थीं। 1954 में उन्होंने जैन बाला विश्राम हाई स्कूल भी खोला।

1882 में देश का पहला शिक्षा आयोजन हंटर कमीशन के नाम से था। शाहाबाद जिले में उन दिनों शिक्षा की क्या प्रगति हुई, उसके बारे में डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर ने लिखा है कि 1871–72 में जिले में सरकार द्वारा सहायता प्राप्त 47 स्कूल थे। 1924 में प्रकाशित गजेटियर के अनुसार 1922 में लड़कों के लिए 23 प्राइमरी स्कूल थे। 1955–56 तक लड़कों के स्कूलों की संख्या 1681 तथा लड़कियों के स्कूलों की संख्या 282 हो गई।

आरा शहर का सबसे पुराना स्कूल जिला स्कूल उच्च माध्यमिक स्कूल है जो 1853 में स्थापित हुआ था। उसके बाद ही डूमराव में 1866 में एक स्कूल स्थापित हुआ था। जिसका नाम राज बहुउद्देशीय उच्च माध्यमिक विद्यालय था। आरा 1882 में टाउनहॉल स्कूल खुला था। उसके बाद 1917 में क्षत्रिय हाई स्कूल स्थापित हुआ। इसी साल शहर में मॉडल इंस्टीट्यूट स्थापित हुआ जो थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा संचालित था। जयप्रकाश नारायण की जीवनी लेखक अवध बिहारी लाल के उसके प्राचार्य थे जो 1942 के

आंदोलन में जेल भी गए थे। 1952 में शहर में कैथोलिक हाई स्कूल भी खुला था। इससे पहले वर्ष 1935 में आरा गर्ल्स हाई स्कूल की स्थापना हुई। आज़ादी के बाद जिला हाई सेकेंडरी स्कूल, आरा तथा आरा टाउन स्कूल, जैन बाला विश्राम और गवर्नमेंट गर्ल्स उच्च माध्यमिक स्कूल को सरकार द्वारा मान्यता मिली और वे बहुउद्देशीय स्कूल घोषित किए गए।

हर प्रसाद जैन कॉलेज की स्थापना आज़ादी से पहले 21 जनवरी 1942 को हुई थी। हर प्रसाद जैन ने इसके लिए 60 हजार रुपये चंदा में दिया था। वह आरा के व्यवसायी होने के साथ–साथ एक लेखक भी थे। 1945 में डुमराँव के महाराज विजय प्रताप ने उस कॉलेज को 22 बीघा ज़मीन भी दान में दी। 1963 तक इस कॉलेज में 3200 छात्र तथा 70 लेक्चरर भी थे। यह कॉलेज भोजपुर इलाके का सबसे मशहूर कॉलेज है। बी.एन. पटना कॉलेज, कालेज तथा लंगट सिंह कॉलेज की गिनती प्रमुख कॉलेजों में होती थी।

डॉ. रमेश कुंतल मेघ, देवराज उपाध्याय, डॉ. नागेश्वर लाल, चंद्रभूषण तिवारी, विजय मोहन सिंह, प्रो. आनंदमूर्ति जैसे अनेक विद्वान लेखक इस कॉलेज से जुड़े थे।

जैन कॉलेज के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण कॉलेज 13 सितंबर 1954 को महाराज कॉलेज के रूप में खुला। पहले यह कॉलेज आरा नागरी प्रचारिणी भवन से शुरू हुआ। बाद में 16 सितंबर 1957 को डुमराँव महाराज ने इसके लिए ज़मीन दी जिस पर इस कॉलेज का भवन बना। केंद्र सरकार ने इस कॉलेज को आरा हाउस भी दे दिया जहां इस कॉलेज का पुस्तकालय है। 1961 से इस कॉलेज में आनर्स की पढ़ाई भी शुरू हो गई। 1963 तक इस कॉलेज में 1700 छात्र तथा 30 लेक्चरर हो गए थे।

महाराज कॉलेज के बाद 14 अक्टूबर 1959 को जगजीवन राम के नाम पर कॉलेज खुला। 1959 में ही लड़कियों के लिए पहला कॉलेज महंत महादेव नंद गिरि के नाम पर खुला। इसकी स्थापना 10 जुलाई को हुई थी। इस कॉलेज की शुरुआत वर्तमान भवन के ठीक सामने एक भवन में हुई थी। जो अब कॉलेज का छात्रावास है। इस कॉलेज की स्थापना के लिए शहीद भवन में बैठक हुई थी। महंत महादेवानंद ने राजेंद्रनगर स्थित अपने दो फ़्लैट बेचकर इस कॉलेज को पैसे दिए। वर्तमान भवन 1977 में बना। कर्पूरी ठाकुर के काल में इस भवन के लिए ज़मीन मिली थी। पहले यह कॉलेज मगध विश्वविद्यालय से अंगीभूत था। बाद में यह कुंवर सिंह विश्वविद्यालय से

अंगीभूत हो गया। कॉलेज की वर्तमान प्राचार्या कुमुदिनी सिंह ने बताया कि 1986 में इस कॉलेज में मनोविज्ञान और गृह विज्ञान में एमएससी की भी पढ़ाई शुरू हो गई। इससे पहले सिर्फ जैन कॉलेज तथा महाराजा कॉलेज में ही एमएससी की पढ़ाई होती थी। 1959 में आरा में मूक बधिरों के लिए एक स्कूल भी स्थापित हुआ। 1948 में आरा में एक संस्कृत हाई स्कूल भी था।

बाद में तपेश्वर सिंह ने लड़कियों के लिए एक प्राइवेट कॉलेज भी खोला जहां काफ़ी लड़कियां पढ़ती हैं। इसके अलावा एस.वी. कॉलेज में भी लड़कियां पढ़ती हैं।

कामिनी सिन्हा कहती हैं कि आरा शहर में लड़कियों की शिक्षा में तेज़ी से विकास हो रहा है। अब इतनी लड़कियां पढ़ने के लिए आ रही हैं कि लड़कियों के लिए शहर में अभी और कॉलेज खोले जाने की जरूरत है। पिछले वर्ष वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में 20 में से 14 स्वर्ण पदक लड़कियों को ही मिले।

इसी कॉलेज की छात्रा मधु सिन्हा ने सामने ही सेंट पॉल स्कूल खोल दिया। इसी कॉलेज की दस से अधिक छात्राएं लेक्चरर, डॉक्टर और वकील भी बनीं। इसी कॉलेज की छात्रा कमल कुमारी बाद में इसी कॉलेज की प्रिंसिपल भी बनी। एक अन्य छात्रा अर्चना संभावनात्मक स्कूल भी चला रही है।

आरा शहर में डीएवी स्कूल भी खुल गया है जिसने कुछ वर्ष पूर्व अपनी रजत जयंती भी मनाई है। इसके बाद शहर में और भी छोटे–छोटे पब्लिक स्कूल खुल गये और आज गली–गली में कॉन्वेंट स्कूलों की बाढ़ आ गई है।

आरा नागरी प्रचारिणी सभा

नवजागरण काल में हिंदी पट्टी में जिस संस्था ने हिंदी के प्रचार–प्रसार में ऐतिहासिक भूमिका अदा की वह काशी नागरी प्रचारिणी सभा थी। जिस वर्ष महापंडित राहुल सांकृत्यायन और आचार्य शिवपूजन सहाय का जन्म हुआ था, उसी वर्ष काशी नागरी प्रचारिणी सभा का भी जन्म हुआ था। 16 जुलाई 1893 को स्थापित इस सभा के संस्थापकों में बाबू श्याम सुंदर दास, राम नारायण मिश्र और शिवशंकर सिंह थे जो नवीं कक्षा के छात्र थे। यह सभा क्वींस कॉलेज में स्थापित हुई थी।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा हिंदी नवजागरण का पहला संस्थागत केंद्र था। इस सभा के पहले अध्यक्ष, राधाकृष्ण दास थे जो भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई थे और सुधाकर द्विवेदी, ग्रियर्सन, अंबिकादत्त व्यास तथा चौधरी प्रेमघन जैसी हस्तियां सभा की सदस्य थी।

हिंदी पट्टी में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने ज्ञान की अलख जगाने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। इसी तर्ज पर 12 अक्टूबर, 1901 में आरा नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। तब यह किराए के भवन में चलती था। यह

आरा नागरी प्रचारिणी सभा

बिहार का पहला बौद्धिक केंद्र था और काशी नागरी प्रचारिणी सभा के बाद दूसरा केंद्र था।

इसके संस्थापकों में महामहोपाध्याय पंडित सकल नारायण शर्मा, देव कुमार जैन, चंद अमीर चंद अग्रवाल, जैनेंद्र किशोर जैन, राय साहब, हरसू प्रसाद, रामकृष्ण दास और जयबहादुर थे। सभा का पंजीकरण 1916 में बिहार के तत्कालीन राज्यपाल सर चार्ल्स वेली के सोसाइटी रूल 1860 के तहत हुआ था।

1928 तक सभा किराए के भवन पर चलती रही। बाबू रामकृष्ण दास ने सभा के लिए एक दो–मंजिला मकान भी दिया था। इसी वर्ष सरकार से पट्टे पर ज़मीन मिलने के बाद भवन की नींव पड़ी। बाबू अमीरचंद ने तब भवन–निर्माण के लिए पांच हज़ार रुपये दान में दिए।

नागरी प्रचारिणी सभा के सचिव रहे रणजीत बहादुर सिंह के अनुसार सभा ने रसायनशास्त्र, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, खगोलशास्त्र पर भी हिंदी में पुस्तकें छापीं। इसके अलावा कुछ उपन्यास तथा जीवनियां भी प्रकाशित हुई थी।

जिस तरह काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने महावीर प्रसाद द्विवेदी पर ऐतिहासिक ग्रंथ निकाला। उसी तरह आरा प्रचारिणी सभा ने हरिऔध जी पर एक अभिनंदन ग्रंथ निकाला और दूसरा अभिनंदन ग्रंथ डॉ. राजेंद्र प्रसाद पर निकाला लेकिन धन के अभाव में राजा राधिकारमण, प्रसाद सिंह तथा रामदहिन मिश्र पर अभिनंदन ग्रंथ नहीं निकल सके। रणजीत बहादुर के अनुसार राजा राधिकारमण प्रसाद इस सभा के कई वर्षों तक अध्यक्ष रहे। उनके निधन के बाद अध्यक्ष पद पर पं. रामप्रीत सिंह आए। पहले वह सभा के प्रधानमंत्री थे।

सभा को आगे बढ़ाने वालों में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के अलावा शिवपूजन सहाय, नेमिचंद्र शास्त्री, निर्मल कुमार जैन, शौकीन सिंह और सिद्धनाथ सिंह जैसे लोग थे। प्रियतम जी के बाद हिंदी के चर्चित पत्रकार एवं लेखक बनारसी प्रसाद भोजपुरी सभा के अध्यक्ष बने। 3 मार्च, 1950 को सभा ने राजेंद्र बाबू को एक अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया। उस समारोह में बिहार के तत्कालीन वित्तमंत्री अनुग्रह नारायण सिंह तथा अचार्य बदरीनाथ वर्मा के प्रयास से सभा को भवन निर्माण के लिए 25 हज़ार रुपए की राशि बिहार सरकार से मिली थी। वर्तमान भवन उसी राशि से बनाया गया था।

आरा की नागरी प्रचारिणी सभा के प्रधानमंत्री ब्रजनंदन सहाय थे। उसके बाद अवध बिहारी शरण, सकल नारायण शर्मा, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, सिद्धनाथ सिंह और राधिका प्रसाद सिंह जैसे लोग प्रधानमंत्री बने। इसके संरक्षकों में कई राजा महाराजा भी थे। इसके अलावा बिहार के अंग्रेज़ गर्वनर सर चार्ल्स स्टुअर्ट वेली, जगजीवन राम, घनश्याम राय मिश्र, द्वारका प्रसाद मिश्र, साहू शांति प्रसाद जैन, जगदीशचंद्र माथुर, बिहार के पूर्व राज्यपाल एस.एम.ओ. आदि थे। आज के समय में सभा की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। धीरे–धीरे सरकार और प्रशासन ने इसमें दिलचस्पी लेनी बंद कर दी। एक ज़माने में बिहार सरकार से मिलने वाली सहायता राशि जब बंद हुई तो रामानंद तिवारी के प्रयासों से दोबारा सहायता राशि मिलने लगी थी। लेकिन अब न तो राजनेताओं तथा प्रशासकों का उस पर ध्यान जाता है और न ही समाजसेवी व्यावसायिकों का। बीच में यह सभा राजनीति और गुटबाजी का भी शिकार हो गई थी। 1960 तक इस सभा की जो गरिमा थी, वह धीरे–धीरे खत्म हो गई। यही हाल काशी नागरी प्रचारिणी सभा की गुटबाजी की भी है। उसकी भी हालत अच्छी नहीं है। इन संस्थाओं में अब नागरिकों की भी रुचि नहीं दिखाई देती है।

आरा काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय, हरिऔध, खान अब्दुल गफ्फार खान, राजेंद्र प्रसाद आदि नेताओं का

अभिनंदन किया और अपने ज़माने के सभी दिग्गज साहित्यकार एवं राजनेता, प्रमुख हस्तियां चाहे वह जगजीवन राम हों, राम सुभग सिंह, बलिराम भगत, सेठ गोविंद दास, जगन्नाथ कौशल, एस.आर. किदवई को आमंत्रित किया और उनका अभिनंदन–सम्मान किया।

सभा पंडित बालकृष्ण भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, सुमित्रानंदन पंत, हजारी प्रसाद द्विवेदी, देवराज उपाध्याय, भगवतीचरण वर्मा, किशोरीदास वाजपेयी, महादेवी वर्मा, चंद्रभूषण तिवारी जैसे अनेक यशस्वी लेखकों के निधन पर शोक सभा आयोजित कर श्रद्धाजलि भी देती रही। इससे पता चलता है कि यह सभा हमेशा अपने समय के बड़े लेखकों का सम्मान करना जानती है। रंजीत बहादुर ने बाद में सभा में जान फूंकने का प्रयास किया था। सभा उच्च स्तरीय शोध का भी प्रकाशन किया जो हिंदी की किसी भी स्तरीय पत्रिका से कम नहीं है। इससे पहले 1905 में ही सभा ने नागरी हितैषिणी पत्रिका भी निकाली थी। इस पत्रिका के संपादक ब्रजनंदन सहाय थे लेकिन उनका नाम नहीं छपता था।

सभा ने जो हरिऔध अभिनंदन ग्रंथ 1936 में निकाला था, उसके संपादक मंडल में सकल नारायण शर्मा, रामप्रीत शर्मा 'प्रियतम' तथा श्री नाथ पांडेय थे। इसकी प्रस्तावना प्रख्यात इतिहासकार काशी प्रसाद जायसवाल ने लिखी थी। इस ग्रंथ में श्याम सुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल, बाबूराम सक्सेना, पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, चंद्रबली पांडेय, नंददुलारे वाजपेयी, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, रामनरेश त्रिपाठी, रामकुमार वर्मा, दिनकर और सोहनलाल द्विवेदी की भी रचनाएं छपी थीं। 1933 में महावीर प्रसाद अभिनंदन ग्रंथ के बाद यह हिंदी का दूसरा महत्त्वपूर्ण अभिनंदन ग्रंथ था।

इस अभिनंदन ग्रंथ के लिए संदेश भेजने वालों में टैगोर, राजेंद्र प्रसाद, सुनीत कुमार चटर्जी, महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। 688 पृष्ठों के इस अभिनंदन ग्रंथ में कुल 131 शोध निबंध एवं कविताएं थीं।

इससे पता चलता है कि आरा शहर के लोगों का सीधा संबंध देश की नामी–गिरामी विभूतियों से था और वह उसकी इस भावना का आदर एवं सम्मान भी करते थे। तभी तो हरिऔध अभिनंदन ग्रंथ निकल पाया। इससे हरिऔध की लोकप्रियता तथा ख्याति का भी अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

आज सभा के पास 25 हज़ार से अधिक पुस्तकें हैं, जिनमें कई पुस्तकें तथा ग्रंथ हैं। आज भी सभा बीच–बीच में कई साहित्यिक समारोह और गोष्ठियां आयोजित करती रहती है। लेकिन वह गरिमा आज लौट नहीं पाई।

राजेंद्र बाबू और आरा शहर

चंपारण आंदोलन की सफलता के बाद बिहार में स्वाधीनता की चेतना अधिक तीव्र गति से फैलने लगी थी। मौलाना मज़हरुल हक़, ब्रजकिशोर बाबू और राजेंद्र बाबू इस चेतना को फैलाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। उनके साथ श्रीकृष्ण बाबू और अनुग्रह बाबू भी कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे थे। इसी सिलसिले में राजेंद्र बाबू बिहार के अन्य शहरों में जाकर सभाओं को संबोधित कर रहे थे। इसी क्रम में उनके आरा आगमन की पहली जानकारी तब मिलती है जब उन्होंने 17 फरवरी 1921 को एक सभा को संबोधित किया था। इससे पहले 1920 में गांधीजी पहली बार आरा आ चुके थे, तब उनके साथ राजेंद्र बाबू नहीं आए थे। इस तरह महात्मा गांधी के आरा शहर आने के बाद यह दूसरी महत्त्वपूर्ण जनसभा थी जिसे राजेंद्र बाबू ने संबोधित किया था। शाहाबाद गजेटियर के अनुसार राजेंद्र बाबू की इस सभा में जगत नारायण लाल तथा अर्जुन सहाय वर्मा भी मौजूद थे। आरा शहर में राजेंद्र बाबू के सहपाठी डॉ. राजेश्वरी प्रसाद भी रहते थे। वह

राजेंद्र प्रसाद की तस्वीर जब वे अभिंदन ग्रंथ समारोह के बाद हिन्दी पुस्तकालय देखने गए।

कोलकाता में प्रेसीडेंसी कॉलेज हॉस्टल राजेंद्र बाबू के साथ एक ही कमरे में रहते थे।

राजेंद्र बाबू ने तब केवल आरा में ही नहीं बल्कि जिले में अन्य स्थानों पर भी सभाएं की थीं और उनमें स्वामी सहजानंद सरस्वती, विंध्यवासिनी प्रसाद, गंगा प्रसाद, जय प्रकाश लाल जैसे लोगों ने भी भाषण दिया था। इन्हीं दिनों महात्मा गांधी ने बक्सर, डुमरांव, विक्रमगंज और कोआथ का भी दौरा किया था।

राजेंद्र बाबू महात्मा गांधी के साथ दूसरी बार 28 जनवरी, 1927 को आरा आए। इसके बाद 1931 में भी राजेंद्र बाबू आरा आए। 30 अगस्त को उन्होंने आरा में एक खादी प्रदर्शनी का भी उद्घाटन किया था। इसके बाद वह बक्सर, डुमरांव और जगदीशपुर भी गए थे जहां उन्होंने जनसभाओं को संबोधित किया था। इसके बाद राजेंद्र बाबू, श्रीकृष्ण बाबू और बलदेव सहाय की टीम ने भी आरा का दौरा किया था। दिसंबर 1931 में जब श्रीकृष्ण सिंह ने अपने भाषण में वीर कुंवर सिंह का ज़िक्र किया तो उन्हें जिले में कोई भी सभा नहीं संबोधित करने नोटिस दिया गया। राजेंद्र बाबू ने शाहाबाद के किसानों के लिए नहर के पानी की दर कम करने के लिए आंदोलन भी किया था।

इसके बाद राजेंद्र बाबू को 3 मार्च, 1950 को आरा नागरी प्रचारिणी सभा ने आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया। हरिऔध के अभिनंदन ग्रंथ के बाद यह दूसरा अभिनंदन ग्रंथ सभा ने प्रकाशित किया था।

इस अभिनंदन ग्रंथ को प्रकाशित करने की योजना 1941 में ही बन गई थी। आरा नागरी प्रचारिणी सभा के भवन में एक साहित्यिक गोष्ठी में यह तय हुआ कि राजेंद्र बाबू की 60वीं वर्षगांठ पर उन्हें एक अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया जाए। उन दिनों सभा के सभापति राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह थे। सभा के प्रधानमंत्री रामप्रीत शर्मा प्रियतम ने राजाजी तथा रामदहिन मिश्र को पत्र लिखा। इसके बाद 4 अप्रैल, 1941 को राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, शौकीन सिंह, सिद्धनाथ सिंह एवं राधिका प्रसाद की एक उपसमिति बनाई गई। 17 मई को सभा की प्रबंध कार्यकारिणी समिति में एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ जिसमें राजेंद्र अभिनंदन ग्रंथ समिति का गठन हुआ जिसमें राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, रामदहिन मिश्र, शौकीन सिंह तथा रामप्रीत शर्मा प्रियतम संयोजक के रूप में शामिल किए गए। 5 अगस्त,

1941 को उसके लिए एक संपादक मंडल भी गठित किया गया जिसमें राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, शिवपूजन सहाय, रामप्रीत शर्मा प्रियतम तथा शौकीन सिंह को लिया गया। लेकिन संपादन का मुख्य दायित्व शिवपूजन सहाय को ही सौंपा गया। जून 1942 तक इसके लिए अधिकांश रचनाएं आ गईं लेकिन सरोजनी नायडू, मदन मोहन मालवीयजी के राजेंद्र बाबू पर संस्मरण ही खो गए। 1942 के आंदोलन के बाद देश की राजनीतिक परिस्थितियों और कई लोगों के जाने के कारण यह ग्रंथ आजादी मिलने के बाद ही छप सका। इस ग्रंथ की *'भूमिका'* प्रियतम जी ने लिखी जबकि *'दो शब्द'* राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने और संपादक मंडल की ओर से भी एक वक्तव्य उसमें छपा था।

अभिनंदन ग्रंथ में निराला, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी और दिनकर की कविता छपी थी। इन्हें मिलाकर राजेंद्र बाबू पर 42 कविता और 41 संस्मरणात्मक लेख प्रकाशित हुए थे। इसके अतिरिक्त 34 लेख हिंदी में और दो लेख अंग्रेज़ी में भी छपे थे। संस्मरणों में डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा और पट्टाभि सीतारमैया के अंग्रेज़ी में संस्मरण छपे थे। नेहरू जी, श्रीकृष्ण सिंह और बिहार के राज्यपाल माधव श्रीहरि अणे के भी संदेश थे। इसके अतिरिक्त 20 चित्र भी थे जिनमें टैगोर के साथ उनका एक दुर्लभ चित्र भी छपा था।

संस्मरणों में काका कालेलकर, बनारसी दास चतुर्वेदी, श्रीप्रकाशजी, डॉ. भगवानदास, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, बेनीपुरी, रघुवीर नारायण और लक्ष्मीनारायण सुधांशु आदि के संस्मरण छपे थे। इस अभिनंदन ग्रंथ में शिवपूजन सहाय का कोई भी लेख या संस्मरण नहीं था। महावीर प्रसाद द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ का संपादन करते हुए भी उनका कोई लेख उस ग्रंथ में नहीं था।

इस ग्रंथ को भेंट किए जाने के लिए राजेंद्र बाबू को आरा आमंत्रित करने के लिए आरा के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी गोविंद नारायण सिंह जीरादेई गए थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में सविस्तार लिखा है कि किस तरह रास्ते में ट्रेन में राजेंद्र बाबू के सहपाठी डॉ. राजेश्वरी प्रसाद मिल गए जो आरा के सबसे पहले सिविल सर्जन थे। गोविंद नारायण सिंह उन्हें भी ले गए और राजेंद्र बाबू ने उनको साथ में देखते ही आरा में अभिनंदन ग्रंथ समारोह के लिए हामी भर दी। तब राजेंद्र बाबू राष्ट्रपति नहीं बने थे लेकिन उनके राष्ट्रपति बनने की घोषणा हो गई थी।

इसके बाद गोविंद नारायण सिंह दिल्ली जाकर राष्ट्रपति भवन में राजेंद्र बाबू से मिले भी थे और आचार्य कृपलानी को आरा आने के लिए आमंत्रित भी किया था। 3 मार्च को समारोह के विशिष्ट अतिथि कृपलानी जी ही थे। इस समारोह में राजेंद्र बाबू ने हिंदी भाषा को लेकर बहुत ही सुंदर और गंभीर भाषण दिया था। राजाजी ने सभा के सभापति के रूप में एक चुटीला और रोचक भाषण दिया था जिसमें उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से नेताओं पर कटाक्ष भी किया था जिससे राजेंद्र बाबू थोड़ा आहत भी हुए थे। गोविंद नारायण सिंह ने अपनी आत्मकथा में उसका ज़िक्र किया है।

अभिनंदन ग्रंथ समारोह के बाद राजेंद्र बाबू पास में ही स्थित बाल पुस्तकालय गए थे और वहां उन्होंने एक ग्रुप फोटो भी खिंचवाया जो आज भी पुस्तकालय के द्वार पर टंगा है।

राजेंद्र बाबू के राष्ट्रपति बनने के बाद उनका संभवतः यह पहला सार्वजनिक कार्यक्रम था। यह आरा शहर के लिए एक ऐतिहासिक घटना थी और शहर में इसकी वर्षों तक चर्चा होती रही। ऐसा भव्य आयोजन आरा शहर में दोबारा नहीं हुआ।

गांधीजी और राजेंद्र बाबू का आरा आगमन इस शहर के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय बन गया जिससे शहर के लोग आज भी गौरवान्वित महसूस करते हैं। जिस तरह द्विवेदी जी को महावीर प्रसाद द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ को भेंट किए जाने के लिए ऐतिहासिक समारोह हुआ था। उसी तरह यह समारोह भी ऐतिहासिक रहा।

इसके बाद तो श्रीकृष्ण बाबू पर भी एक अभिनंदन ग्रंथ निकला। 1960 में जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावतीजी की पहल पर महिला चर्खा समिति की ओर से राजेंद्र बाबू को एक और अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया। इसका संपादन भी आचार्य शिवपूजन सहाय ने ही किया था। इसके लिए भी पटना में आयोजित समारोह में राजेंद्र बाबू, जयप्रकाश नारायण, श्रीकृष्ण बाबू समेत अन्य गणमान्य अतिथि मौजूद थे। कुछ वर्ष बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू पर भी अभिनंदन ग्रंथ निकला जिसके संपादक मंडल में अज्ञेयजी भी थे। हरिऔध और राजेन्द्र प्रसाद पर अभिनंदन ग्रंथ निकलने के बाद आरा नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से फिर कोई ऐसा ग्रंथ नहीं निकाला गया। और अब दोनों अभिनंदन ग्रंथ देश के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय बन गए हैं।

नाटकों का शहर

भारत में रंगमंच की पुरानी परंपरा रही है। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र और संस्कृत के नाटक इसके प्रमाण हैं। आधुनिक भारत में मराठी और पारसी नाटकों से भारतीय रंगमंच की शुरुआत होती है। कहा जाता है कि उर्दू का पहला नाटक 1853 में लखनऊ में वाजिद अली शाह के ज़माने में प्रकाशित हुआ था। 1853 में ही मुंबई में पारसी नाटक मंच की स्थापना हुई। गोपालदास गहमरी ने 1927 में एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने *दैनिक आज* में बताया था कि 42 वर्ष पहले बलिया में भारतेंदु ने अपने नाटक *राजा हरिश्चंद्र* में खुद हरिश्चंद्र का अभिनय किया था। इसमें रायकृष्ण दास ने भी अभिनय किया था।

इस दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी प्रदेश में पहले हिंदी नाटक के मंचन की घटना की जानकारी प्राप्त होती है। लेकिन पहली नाट्य समिति प्रयाग की हिंदी नाट्य समिति ही थी। शिवपूजन सहाय ने इस नाट्य समिति के बारे में एक लेख में कहा था कि हिंदी की जितनी नाट्य मंडलियां हुई हैं, उनमें प्रयाग की नाट्य समिति पहली नाट्य मंडली है। इसका स्थापना काल 1898 बताया गया है। लेकिन आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उस ज़माने में आरा में भी एक नाट्य मंडली स्थापित हुई थी। इस शहर के नाटककार और उपन्यासकार जैनेंद्र किशोर जैन थे, जिनका जन्म 1871 हुआ था। वह शिवनंदन बाबू सहाय के समकालीन थे। जैन की मृत्यु 1909 में हो गई थी। शहर के चर्चित नाटककार श्याम मोहन अस्थाना ने आरा रंगमंच के सौ वर्ष नामक लेख में लिखा है कि जैनेंद्र किशोर ने शहर में जैन नाटक मंडली नामक पहला नाट्य मंच स्थापित किया था। उन्होंने उस लेख में इस मंडली का स्थापना काल नहीं बताया है। इस मंडली के नाटककारों में शिवनंदन सहाय, ब्रजनंदन सहाय, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह और पंडित ईश्वरी प्रसाद शर्मा थे। ईश्वरी जी नाटककार होने के अलावा कुशल नाट्य निर्देशक भी थे। उन्होंने मनोरंजन नाटक मंडली नामक एक अलग संस्था बनाई थी। शर्मा जी ने *सत्य हरिश्चंद्र* का मंचन किया था। इसमें उन्होंने डोम राजा की भूमिका निभाई थी। इसमें शिवपूजन सहाय ने भी भूमिका भी निभाई थी। 1916 में पटना के अखबार *सर्च लाइट* में प्रकाशित

एक रिपोर्ट में इस नाटक की चर्चा है। उस ज़माने में पटना एवं अन्य शहरों में नाट्य मंडलियों की कोई जानकारी नहीं मिलती है। लेकिन बीसवीं सदी के दूसरे दशक में ही बाल पुस्तकालय के सदस्यों ने हिंदी नाट्य समिति का गठन किया ताकि भाषा एवं संस्कृति का प्रचार हो सके। पुस्तकालय के सभापति एवं हिंदी के मशहूर लेखक राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का एक नाटक खेला गया जिसमें सरदार हरिहर सिंह, लल्लन बाबू और सुप्रसिद्ध अधिवक्ता महावीर प्रसाद ने अभिनय किया था। तब राजा जी का *नवीन सुधारक,* रामायण बाबू का *सोहराब रुस्तम* और *नागरी किरदार* नाटक बहुत लोकप्रिय हुए। ईश्वरी प्रसाद शर्मा के बाद आरा में हरिहर प्रसाद और भगवती राकेश नामक दो नाटककार सामने आए। राकेश की काव्य नाटिका *सौमित्र* बहुत लोकप्रिय हुई थी।

श्याम मोहन अस्थाना जी ने लिखा है कि ईश्वरी प्रसाद की मृत्यु के बाद आरा रंगमंच पर दो दशक तक सन्नाटा छाया रहा।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति अमरनाथ झा के भाई विभूतिनाथ झा आरा में डिप्टी कलेक्टर बनकर आए। उनके कार्यकाल में आरा रंगमंच में फिर से जान आई।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में आरा रंगमंच को जैन स्कूल के टीचर वरदा बाबू ने जीवित किया और जगदीशचंद्र माथुर का मशहूर नाटक *कोणार्क* मंचित हुआ। उनकी इस परंपरा को वेदनंदन सहाय, वीरेंद्र किशोर तथा रवि रंजन सिन्हा ने आगे बढ़ाया। वीरेंद्र किशोर तथा देवनंदन सहाय खुद एक अच्छे नाटककार थे। उन्होंने अपने नाटकों को मंचित कराया।

शहर में रंगमंच को विकसित करने में 1924 में जन्मे श्याम मोहन अस्थाना ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वह मूलतः बनारस के रहने वाले थे और 1956 में आरा आ गए थे। वह महाराजा कॉलेज में राजनीति विभाग के प्रोफेसर थे और इसके पहले वह कुछ वर्ष नेपाल में भी थे। वह वहां त्रिचंद कॉलेज में पढ़ाते थे। आरा शहर में रहते हुए उन्होंने कुल 14–15 नाटक लिखे थे तथा 100 से अधिक रेडियो नाटक भी लिखे थे। अस्थाना जी ने खुद लिखा है कि – सन् 1966 की बात है। आरा में आकाशवाणी दिल्ली के ड्रामा प्रोड्यूसर श्री चिरंजीत का आगमन हुआ। उनके स्वागत में एक भव्य कार्यक्रम हुआ। कार्यक्रम में मेरी एक नृत्य नाटिका थी। चिरंजित जी उस नाटिका से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने मुझे रेडियो नाटक लिखने के लिए

प्रेरित किया। मैंने उनसे प्रेरित होकर रेडियो नाटक लिखा और 1968 में आकाशवाणी से मेरा पहला रेडियो नाटक *रात* प्रसारित हुआ। इस तरह तीन वर्षों में मैंने कुल 100 रेडियो नाटक लिखे जो आकाशवाणी पटना, विविध भारती तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम में प्रसारित हुए।

उनकी पुत्री कावेरी आस्थाना ने बताया कि उनके पिता के नाटकों का मंचन देश के सभी प्रमुख शहरों में हुआ। एक बार दिल्ली के प्यारे लाल भवन में उनका नाटक *नारद जी* चुनाव के चक्कर में मंचन हुआ था।

यह उनके प्रमुख नाटकों में है जिसके 25–26 बार मंचन हो चुके हैं। उनके नाटक इलाहाबाद, बनारस, गया, मेरठ, रामनगर, औरंगाबाद, शिमला, गुवाहाटी, बड़ोदरा रामनगर में भी हो चुके हैं।

आरा शहर में नाटकों का मंचन काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सभागार में होता रहा है लेकिन कुछ नाटकों का मंचन *सपना* और *मोहन* सिनेमा घर में भी हुआ है। सत्तर के दशक में आरा शहर में युवा लेखकों तथा रंगकर्मियों ने युवा नीति नामक एक संस्था बनाई जिसने शहर में रंगमंच को नया स्वरूप प्रदान किया। इनमें चर्चित नाटककार राजेश कुमार, नवेंदु, श्रीकांत, सीरिल मैथ्यू, रामेश्वर उपाध्याय और सुभाष सरकार जैसे लोग थे। बाद में राजेश कुमार, लखनऊ जा बसे और मैथ्यू भी आरा के बाहर चले गए। नवेंदु और श्रीकांत भी पटना में पत्रकारिता करते हुए बस गए। युवा नीति ने मधुकर सिंह की कहानी *'दुश्मन'* पर एक सफल और चर्चित नाटक पेश किया जो कई बार खेला गया। राजेश कुमार के शब्दों में संस्था के अधिकतर लोगों को प्रारंभ में साहित्य सत्संग का लाभ होने के कारण मानवीय मूल्यों का बोध तो हो गया था पर राजनीतिक चेतना के प्रति सजगता मधुकर सिंह के माध्यम से ही संभव हुई। मधुकर सिंह कहानीकार के साथ–साथ नाटककार भी थे। उनकी रचनाओं में भूमि संघर्ष, शोषण और सामाजिक न्याय को लेकर छटपटाहट रहती थी।

राजेश कुमार का कहना है कि युवा नीति के नाटक श्याम मोहन अस्थाना औरों से अलग थे। आरा शहर में अब दो धाराएं चलने लगीं थीं। एक धारा सत्ता के आस–पास चल रही थी तो दूसरी सत्ता को चुनौती देकर। *दुश्मन* का मंचन 5 जून, 1978 को जवाहर टोला स्थित मुसहर टोले में हुआ था। और इस नाटक में आज के जाने–माने इतिहासकार और कवि बद्री नारायण ने भी भाग लिया। अब युवा नीति ने चेखव का *गिरगिट*, शिवराम का *जनता*

पागल हो गई है, राजेश कुमार का *मुर्गे जनम के हत्यारे,* रमेश उपाध्याय का *जन की पुकार,* अरूप रंजन का *पत्ता खोर* नामक नाटक खेल कर पूरे इलाके में आंदोलन खड़ा कर दिया है। युवा नीति संस्था आज भी सक्रिय है और वह शहर में नाटक खेलती है।

युवा नीति के समय ही अशोक मानव के नेतृत्व में 'भूमिका' ने भी बड़ी भूमिका अदा की। श्री मानव का कहना है कि श्याम मोहन अस्थाना की टीम के प्रमुख अभिनेता जितेंद्र मोहन ने भूमिका की स्थापना 1978 के आसपास की थी। जब वह मुंबई चले गए तो उनका बोझ मेरे कंधे पर आ गया और जिसके बैनर तले हमने 18–19 नाटक किए जिनमें *दिल्ली ऊंचा सुनती* है एवं *आधे अधूरे* प्रमुख हैं। उस दौरान हमने महाभोज नामक नाटक भी किया था जिसके पांच शो शहर में हुए थे और लोगों ने टिकट खरीदकर नाटक देखा था। इतने बड़े पैमाने पर बिहार में कोई नाटक नहीं हुआ। शहर में युवा नीति और भूमिका के अलावा नवोदय तथा अभिनव राग नामक संस्थाओं ने भी नाटकों का मंचन किया। बाद में शहर में नाट्य प्रतियोगिताएँ भी होने लगीं। गौतम एजुकेशन सोसाइटी और आर्टिस्ट एसोसिएशन के बैनर तले ये नाट्य प्रतियोगिताएं होने लगीं। आर्टिस्ट एसोसिएशन के तत्वावधान में आयोजित नाट्य प्रतियोगिता में 65 टीमों ने भाग लिया था। दरअसल नाट्य प्रतियोगिता के आयोजन का सिलसिला 2003 में तब शुरू हुआ जब एक युवा रंगकर्मी वृषकेतु की स्मृति में पहली बार नाट्य प्रतियोगिता हुई।

श्री मानव का कहना है कि 2005 में भिखारी ठाकुर की स्मृति में भी नाट्य महोत्सव हुआ था। इसमें 15–16 टीमों ने भाग लिया था। इस वर्ष जून में भी एक नाट्य महोत्सव हुआ। इस तरह जैनेंद्र किशोर जैन ने शहर में रंगमंच की जो नींव डाली थी और उस पर श्याम मोहन अस्थाना ने जो इमारत रखी थी, उस परंपरा को आगे बढ़ाने में युवा नीति और भूमिका ने बड़ा योगदान दिया जिससे शहर में रंगमंच जीवित तो है पर वह अभी भी संघर्ष कर रहा है। वैसे देश के हर शहर में रंगमंच की कमोबेश यही स्थिति है।

बाल हिंदी पुस्तकालय

अपने देश में पुस्तकालय आंदोलन अभी पूरी तरह शुरू नहीं हुआ है जिस तरह कुछ पश्चिमी देशों में पुस्तकालयों की ज़रूरत पर ध्यान दिया गया है, फिर भी 19वीं सदी के अंत में या बीसवीं सदी के प्रारंभ में देश में कई जगह कुछ पुस्तकालय और वाचनालय ज़रूर खुले। मारवाड़ी समाज ने इन पुस्तकालयों को खोलने पर बल दिया। यही कारण है कि कई शहरों में आज भी पुराने पुस्तकालयों में मारवाड़ी पुस्तकालय बचे हुए हैं। इसके अलावा कई शहरों में निजी ट्रस्ट एवं स्वयंसेवियों ने भी पुस्तकालय खोले। जिन में सर सच्चिदानंद सिन्हा ने पटना में एक बड़ा पुस्तकालय खोला था जिसे हम 'सिन्हा लायब्रेरी' के नाम से जानते हैं।

पुस्तकालय किस तरह शहर की संस्कृति और लोगों के संस्कार तथा मानसिकता को बदल देते हैं, इसका आप अंदाज़ा नहीं लगा सकते हैं। पुस्तकालयों की किताबें और पत्रिकाएं लोगों के जीवन की दिशा को चुपचाप बदल देती हैं। आरा नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय ने उन दिनों शहर

ऐतिहासिक बाल हिन्दी पुस्तकालय

के लेखकों–पत्रकारों को पुष्पित–पल्लवित करने में बड़ी भूमिका निभाई थी।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान इस तरह के पुस्तकालय न केवल लोगों की बौद्धिक प्यास को मिटाते थे बल्कि दुनिया से उन्हें जोड़ते थे और बेहतर समाज की कल्पना को भी जन्म देते थे साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने का भी काम करते थे।

आरा का बाल हिंदी पुस्तकालय एक ऐसा ही केंद्र था। आरा नागरी प्रचारिणी सभा के बाद यह शहर का दूसरा ऐसा बौद्धिक संस्थान था जिसकी अमिट छाप शहर के लोगों पर पड़ी। आज भले ही शहर में बाज़ार खुलने–बढ़ने से यह पुस्तकालय थोड़ा छिप गया है लेकिन शहर के जन जीवन में इसकी अहमियत आज भी बनी हुई है।

इस पुस्तकालय की कहानी भी कम दिलचस्प नहीं है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान क्रांतिकारियों और स्वतंत्रता सेनानियों के लिए इस शहर में कोई ऐसी जगह नहीं थी जहां वे एक जगह एकत्रित हो सकें और अंग्रेजों की निगाहों से छिप भी सकें। प्रसिद्ध आर्यसमाजी सत्यदेव परिव्राजक अमरीका से लौटे तो उन्होंने हिंदी के विकास एवं राष्ट्रीयता की भावना जगाने के लिए शहर से गांव तक यात्रा कर एक अभियान चलाया और इसी क्रम में वह आरा भी पहुंचे। उन्होंने तब नवयुवकों से कहा कि एक जगह इकट्ठा होने का सबसे उत्तम मंच पुस्तकालय होगा जिसमें हम अपनी मातृभाषा हिंदी एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास को मूर्त रूप दे पाएंगे और अंग्रेज़ों की नज़र में भी नहीं आएंगे।

पुस्तकालय के सचिव विजय कुमार सिंह बताते हैं कि परिव्राजक जी के विचारों को मूर्त रूप देने के लिए रामायण प्रसाद के नेतृत्व में 31 जनवरी 1914 को वसंतपंचमी के दिन बाल हिंदी पुस्तकालय की स्थापना एक किराए के मकान में की गई।

उन्हीं दिनों महाराज का मुकदमा आरा के वैयक्तिक न्यायालय में चल रहा था जहां देशबंधु चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू और श्रीनिवास आयंगर जैसे लोग यहां आने लगे। इन महापुरुषों से इस पुस्तकालय को भरपूर सहारा और ख्याति मिली।

पुस्तकालय के प्रथम सभापति न्यायमूर्ति सर ज्वाला प्रसाद थे जो पटना उच्च न्यायालय के प्रथम न्यायाधीश बने थे। सच्चिदानंद सिन्हा के बाद उनकी ही सबसे अधिक ख्याति थी।

धीरे–धीरे यह संस्था पूरे जनपद की राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र बन गई। इसके सदस्य राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। जिस तरह आरा नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना एवं विकास में स्थानीय संपन्न नागरिकों तथा साहित्यकारों ने मदद की, उसी तरह इस पुस्तकालय को विकसित करने में भी उन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुस्तकालय के भवन निर्माण के लिए हरि जी राय बहादुर, हरिहर प्रसाद सिंह, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, अमीरचंद्र अग्रवाल, रामायण बाबू की अहम भूमिका थी। पुस्तकालय के सदस्यों ने भाषा एवं संस्कृति के प्रचार के लिए हिंदी नाट्य समिति की भी स्थापना की जिसके तत्त्वावधान में उन दिनों कई नाटक भी खेले गए थे।

जब महात्मा गांधी 28 जनवरी 1927 को आरा शहर में आए और इस पुस्तकालय के बारे में उन्हें जानकारी मिली तो उन्होंने इसे देखने की इच्छा व्यक्त की। श्री विजयजी बताते हैं कि 'बाल हिंदी पुस्तकालय' में बापू का आगमन एक ऐतिहासिक घटना थी। गांधीजी पुस्तकालय के नए कक्ष में करीब डेढ़ घंटे ठहरे थे। गांधीजी जिस कक्ष में बैठे थे, उसे आज 'बापू कक्ष' कहा जाता है। उन्होंने बताया कि गांधीजी ने देशबंधु चितरंजन दास भवन का भी उद्घाटन किया था।

जब 26 जनवरी, 1930 को रावी तट के किनारे कांग्रेस के अधिवेशन में नेहरु जी ने पूर्ण स्वतंत्रता का नारा देते हुए राष्ट्रीय ध्वज फहराया था तो उस दिन पुस्तकालय में भी पूर्ण स्वतंत्रता दिवस मनाया गया और पुस्तकालय के सदस्यों ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रतिज्ञा पत्र भी पढ़ा था। यह शहर की महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसके बाद सत्याग्रह का पहला जत्था यहीं से रवाना हुआ। पुस्तकालय में एक चरखा क्लब भी था और यहां खादी प्रदर्शनी भी लगी थी। राजेंद्र बाबू जब आरा आए थे तो उन्होंने इसी पुस्तकालय में खादी प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था।

यह पुस्तकालय स्वतंत्रता सेनानियों का प्रमुख अड्डा बन गया था जिसके कारण अंग्रेज प्रशासन की नजरों में यह चढ़ गया। तत्कालीन अंग्रेज़ कलेक्टर ने उसे हॉट बेड ऑफ़ पालिटिक्स भी कहा था। 1934 के प्रारंभ में अंग्रेज़ी हुकूमत ने इस पुस्तकालय पर देशद्रोह का मुकदमा कर उसे जब्त कर लिया था। संभवतः यह देश का पहला ऐसा पुस्तकालय होगा जिस पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया। 1934 में यह मुकदमा खत्म हुआ और उस पर से पाबंदी हटी।

24 दिसंबर, 1937 को बिहार प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन का पंद्रहवां अधिवेशन भी इसी पुस्तकालय में हुआ। इस अधिवेशन के स्वागत अध्यक्ष राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह थे।

1945 में पुस्तकालय में नई कार्यकारिणी बनी जिसमें स्थानीय ज़मींदार ब्रजकिशोर प्रसाद, भागवत प्रसाद अग्रवाल एवं प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, रघुवंश नारायण सिंह थे। श्री अग्रवाल ने पुस्तकालय के भवन का नया रूप दिया। इस पुस्तकालय में भिखारी ठाकुर के नाटकों का भी प्रदर्शन हुआ।

30 जनवरी, 1948 को महात्मा गांधी की जब हत्या हुई तो उस पुस्तकालय में एक शोक सभा भी आयोजित की गई और गांधी जी की स्मृति में एक व्याख्यानमाला भी शुरू करने का प्रस्ताव रखा गया। आजादी के बाद 12 फरवरी, 1950 को बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री श्री कृष्ण सिंह ने पहला गांधी व्याख्यान दिया। मुख्यमंत्री ने इस पुस्तकालय को कुछ आर्थिक मदद भी की थी। 3 मार्च, 1950 को जब आरा नागरी प्रचारिणी सभा में राष्ट्रपति को राजेंद्र अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया तो वह इस पुस्तकालय में भी आए और हमें देखकर अत्यंत प्रसन्न भी हुए। जून, 1950 में बिहार के तत्कालीन शिक्षा मंत्री बदरीनाथ वर्मा भी इस पुस्तकालय में आए और पांच हजार रुपए का अनुदान भी दिया।

इस पुस्तकालय में बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन का 22वां अधिवेशन आयोजित करने का ज़िम्मा भी लिया और इसके लिए एक स्वागत समिति भी गठित की गई। इस सम्मेलन की अध्यक्षता रामवृक्ष बेनीपुरी ने की थी और इसमें महादेवी वर्मा, हरिवंश राय बच्चन ने भाग लिया। अधिवेशन के बाद ये सभी लेखक बाल पुस्तकालय आए। अधिवेशन एच.डी. जैन कॉलेज आरा में हुआ था।

इस पुस्तकालय में बाबू शिवनंदन सहाय के लेखक पुत्र ब्रजनंदन सहाय ने बहुत मदद की। उन्होंने अपने पिता की समस्त पुस्तकें एवं आलमारियां पुस्तकालय को दान में दे दीं।

26 सितंबर, 1963 को तत्कालीन कृषि मंत्री रामसुभग सिंह भी इस पुस्तकालय में आए। इस तरह से आरा शहर में जब भी कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति आता था, तो वह एक बार इस पुस्तकालय को देखने ज़रूर जाता था।

बाल पुस्तकालय के नेतृत्व में ही आरा नागरी प्रचारिणी सभा के केंद्रीय कक्ष में पंचशती समारोह मनाया गया। मार्च 1989 में पुस्तकालय ने प्रेमचंद

जन्मशती समारोह भी मनाया। स्थानीय रूपम सिनेमा हाल में *'मेरा नाम मथुरा है'* का मंचन भी किया गया।

यह पुस्तकालय धीरे–धीरे इतना लोकप्रिय हो गया कि जिले में इसकी करीब 20 शाखाएं और खुल गईं। इनमें बक्सर, सासाराम, भभुआ, डुमरांव, नारायणपुर, जगदीशपुर आदि प्रमुख हैं। इनमें से कई के भवन भी बन चुके हैं।

इससे पता चलता है कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान और आज़ादी के तत्काल बाद भी भारतीय समाज को एक अच्छे पुस्तकालय की ज़रूरत थी। सरकार ने देश के पुस्तकालयों को मज़बूत बनाने के लिए लाइब्रेरी मिशन की शुरुआत की है, लेकिन अभी भी देश में पुस्तकालय आंदोलन की ज़रूरत है, भले ही अब ज़माना इंटरनेट का आ गया हो और वर्चुअल लाइब्रेरी की बात कही जा रही हो फिर भी कोलकाता की नेशनल लाइब्रेरी, दिल्ली के नेहरु संग्रहालय एवं पुस्तकालय और कई विश्वविद्यालयों के समृद्ध एवं उत्कृष्ट पुस्तकालयों के प्रति छात्रों का आकर्षण बना हुआ है।

आरा शहर के रंग और मिज़ाज़ को बनाने में नागरी प्रचारिणी सभा की तरह बाल पुस्तकालय का योगदान भी अविस्मरणीय रहेगा।

क्या गालिब आरा आए थे?

क्या उर्दू के मशहूर शायर मिर्जा गालिब आरा आए थे? यह सुनकर हर कोई चौंक जाता है पर आरा के मशहूर अदीब आरिफ़ माहरारवी ने एक ज़माने में एक बेहद चर्चित लेख भी लिखा था कि *गालिब आरा आए थे*। उनका यह लेख बहुत विवादों में भी रहा क्योंकि कई लोगों का मानना है कि गालिब आरा नहीं आए थे पर 1980 में प्रकाशित माहरारवी साहब की किताब में भी इस बात का ज़िक्र है कि गालिब ने आबे सोन यानी सोन नदी का पानी चखा था। यह संभव भी है कि गालिब जब अपनी पेंशन के लिए कोलकाता गए थे तो रास्ते में आरा भी रुके हों। 1827 के जून महीने में गालिब कोलकाता रवाना हुए थे और अगस्त 1827 में बदायूं पहुंचे, जहां वह 6 महीने रहे फिर 1828 के आरंभ में बनारस पहुंचे, बनारस से वह कोलकाता रवाना हुए थे। फरवरी 1828 में वह कोलकाता पहुंचे थे। इस दरमियान संभव है कि, वह कुछ दिन आरा में भी रुके हों। आरा शहर में मीर के ज़माने से ही कई शायर रहे हैं। माहिर माहरारवी साहब ने *आरा सुखन–ओ–शहर* नामक एक किताब लिखी है जिसमें 1747 में जन्मे शहर के पहले शायर खुर्शीद अली खुर्शीद बिलग्रामी से लेकर 1965 तक जन्मे करीब 350 शायरों का ज़िक्र है।

माहरारवी साहब ने यह भी लिखा है कि जब 1529 में बाबर ने बिहार पर हमला किया था। उन्होंने यह भी लिखा है कि अबुल फ़ज़ल ने भी आरा का ज़िक्र किया है। वह आरा में ठहरे थे जहां आज स्कूल है। आरा में औरंगजेब के ठहरने की भी चर्चा है। औरंगजेब जहां ठहरा था, वहीं आज शाही मस्जिद है। उसकी बुनियाद औरंगजेब ने ही रखी थी। 1888 में पटना के एक मुशायरे में दाग देहलवी भी आए थे। माहरारवी साहब ने यह भी लिखा है कि गालिब के दो शिष्य बाकर और सुखन भी आरा शहर से ताल्लुकात रखते थे। उस ज़माने में सासाराम, आरा और अमीनाबाद उर्दू अदब और प्रेस के केंद्र थे। ऐसे में बहुत संभव है कि गालिब आरा आए भी हों क्योंकि यह कोलकाता के रास्ते में पड़ता था। उन दिनों कोलकाता तक स्टीमर सेवा भी थी। 1800 के आसपास सदल मिश्र भी उसी स्टीमर सेवा से कोलकाता गए थे।

गालिब आरा आए या नहीं आए, वे कहां ठहरे या किससे मिले, यह शोध का विषय है और संभव है कि आप इस पर कभी एकमत न हों, क्योंकि इसका पक्का सबूत नहीं मिलता है। वैसे गालिब के बारे में कई प्रसंगों को लेकर आज भी पक्का सबूत नहीं है और उसको लेकर विद्वानों में विवाद भी है पर यह सच है कि आरा उर्दू अदब की नज़र से न केवल बिहार का बल्कि पूरे हिंदुस्तान का एक अनोखा शहर था। 1757 से लेकर 1965 तक शायद ही किसी शहर में उर्दू के लगभग 400 शायर हुए हों। 1757 से 1800 के बीच आरा में 10 शायर हुए जबकि 1800 से 1900 के बीच 220 शायर तथा 1900 से 1965 के बीच 161 शायर हुए। इस तरह कुल 391 शायर उस शहर में हुए और उन सबका ज़िक्र माहरारवी साहब ने किया है।

माहरारवी साहब ने अपनी किताब में इन शायरों का ज़िक्र कर एक ऐतिहासिक काम कर दिया है और यह जानकर आश्चर्य होता है कि उर्दू की इस किताब को लेकर वहाँ के लोगों में विशेष दिलचस्पी नहीं है और न ही कोई चर्चा है। उनकी यह किताब खुदाबख्श खां लाइब्रेरी में मौजूद है।

उन्होंने यह भी लिखा है कि 1857 के आसपास आरा शहर में अदबी अंजुमन भी शुरू हो गई थीं। ख़्वाजा फखरुद्दीन हुसैन ने 1860 में शहर में अदबी महफिलों की शुरुआत की थी। उस ज़माने में अंजुमन भी शुरू हुआ जिसमें फरजंद अहमद, सफीर, बलग्रासी, माहरारवी, बाकर आरवी, मुंशी अहमद खान, मियांजान है। बालकराम मुंशी, रघुवीर दयाल जैसे शायर भी थे। इससे पता चलता है कि केवल मुस्लिम ही नहीं बल्कि कई हिंदू लोग भी शेरो–शायरी में सक्रिय थे।

यह सिलसिला 19वीं तथा 20वीं सदी के आरंभ में भी जारी रहा और 1920 तक यह जोरों पर था। 1944 में जैन कॉलेज की स्थापना होने पर कॉलेज में भी बज़्म–ए–अदब होती रही। उसके सालाना मुशायरे में जगन्नाथ आज़ाद जैसे शायर भी आए थे। माहरारवी साहब ने यह भी लिखा है कि अकबर इलाहाबादी का बचपन भी नगर में बीता था। इसका सीधा संबंध आरा शहर से भले न हो पर इस ज़िले की आबो–हवा में शायरी और अदब की खूबी ज़रूर है। माहरारवी साहब ने शहर में हुई। उर्दू– होली–छठ पर कौमी एकता के मंज़र का भी ज़िक्र किया है। उर्दू के शायर हमेशा दोनों

कौमों में मोहब्बत और अमन की बात करते रहे तथा गंगा जमुनी संस्कृति पर ज़ोर देते रहे।

यही कारण है कि शहर में दोनों कौमों में एक सांस्कृतिक एकता दिखाई देती रही। यह खान–पान से लेकर बोली, भाषा और तहज़ीब में भी नज़र आती है और इसकी वजह से आरा शहर के हिंदी–उर्दू लेखकों के बीच ज़बरदस्त दोस्ती, एकता और दिखाई देती है। हिंदी के लेखक राजा राधिकारमण सिंह जो आरा में वर्षों रहे, अपनी उर्दू मिश्रित शैली के लिए जाने जाते रहे। आरिफ माहरारवी साहब की दोस्ती भी उनसे रही। ये लेखक एक–दूसरे के जलसे में भी श्रोता रहे। जुवैद, आलम, शीन हयात, मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी, नोमान शौक जैसे लेखक इस शहर की पहचान रहे। यह अलग बात है कि बाद में वे शहर छोड़कर चले गए। उर्दू के मशहूर शायर सुल्तान अख्तर भी आरा रही। इस नाते भी उनका जुड़ाव इस शहर से रहा, यद्यपि वह पटना में ही रहते हैं।

दरअसल आरा शहर में शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। समाज के प्रसिद्ध लोगों ने भी खास ध्यान दिया। आरा टाउन हॉल स्कूल की स्थापना 1880 में सैयद लुकमान अली हैदर ने की थी जो खुद अच्छे शायर और वकील थे तथा उस ज़माने में शहर के मशहूर लोगों में थे। यह शहर का सबसे पुराना स्कूल था। उनका जन्म 1815 में हुआ था। वे महादेव मोहल्ले के रईस थे और सलीम तथा फकीर नाम से शायरी भी करते थे। 1894 में मीरगंज, गांगी पुल के पास मदरसा हनीफिया भी खुला था जो शहर का सबसे पुराना मदरसा है। महादेवा में मदरसा फैजुल्लाह गुरवा भी बाद में खुला था।

आरा के मुस्लिम समाज के बड़े अफसरों में चौधरी वजाहत हुसैन का बहुत नाम है। वह 1919 में आईसीएस भी हुए थे। वह चौधरियाना मोहल्ले के थे और मुंबई में रिजर्व बैंक के गर्वनर भी हुए। 1945 में उनका इंतकाल हो गया। उनके ही खानदान में चौधरी हिफाजत हुसैन ने भी आईसीएस किया था 1936 में। इस तरह आरा का मुस्लिम समाज भी काफी पढ़ा–लिखा और दानिशमंद था। लेकिन एक बड़ा तबका आज खस्ता हालत में है और कपड़ा, सब्जी, मीट बाजार तथा दर्जी एवं फर्नीचर आदि के काम में लगा है और अपनी जीविका चला रहा है। उच्च शिक्षा में उसकी उतनी पैठ नहीं है।

बीबी का मज़ार

शाह फरीद का मज़ार

शाह फरीद के मज़ार के भीतर का दृश्य

आरा जिला अदालत

मोहन सिनेमा

ऐतिहासिक रमना मैदान का दृश्य

नागरी प्रचारिणी सभा, आरा

आरा शहर का ऐतिहासिक रमना मैदान

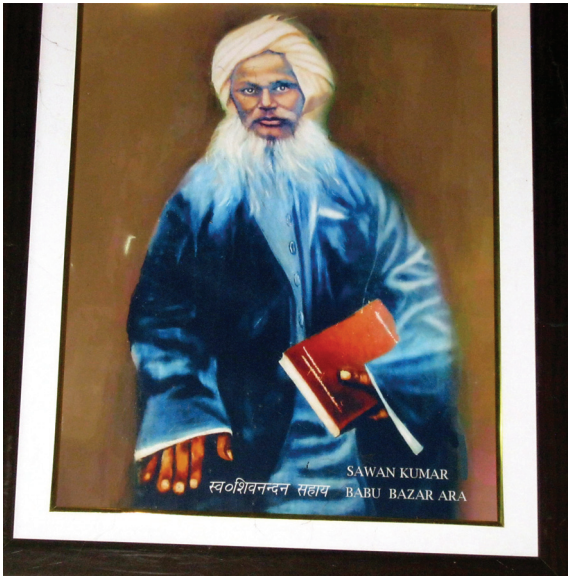

भारतेंदु के मित्र बाबू शिवानंद सहाय

शहर का सबसे पुराना मुहल्ला–बाबू बाज़ार। इसी मुहल्ले में वीर कुंवर सिंह की कोठी भी थी।

शहर का अतीत

आज आप जिस आरा शहर को देख रहे हैं, वह आज से 200 साल पहले इस तरह नहीं था। पिछले दो सौ सालों में आरा शहर का चेहरा बिलकुल बदल गया है। आरा शहर के बारे में पहला विवरण फ्रांसिस बुकानन का ही मिलता है। वह नवंबर 1912 में पहली बार आरा शहर में आए थे। उन्होंने शाहाबाद ज़िले पर अपनी पुस्तक लिखते हुए आरा शहर के बारे में भी ज़िक्र किया है।

बुकानन ने लिखा है कि तब शहर में 2775 घर थे और प्रत्येक घर में आठ लोग रहते थे। इस लिहाज़ करीब से देखा जाए तो करीब 18 हज़ार की आबादी थी। ये घर आपस में सटे हुए थे सुंदर सड़कें सुंदर थीं और गलियां भी ठीक–ठाक थीं। इस शहर में अक्सर बाढ़ आती थी। यह शहर व्यापार के लिए उचित नहीं था। शहर में कलेक्टर और उसके सहायकों का घर था और कुछ लोग भी रहते थे। शहर में जेल की इमारत बहुत खस्ता हालत में थी। तब शहर में दो–तीन मस्जिदें तथा मंदिर भी थे। शहर में पेड़ और फूल–पत्ती भी थे।

आरा शहर के पुराने मोहल्लों में बाबू बाज़ार था जो श्री वीरकुंवर सिंह के नाम पर बना था। यहां वीरकुंवर सिंह की एक कोठी भी थी और उसमें बाज़ार लगता था। बाद में बाबू वीरकुंवर सिंह की कोठी को रायबहादुर सच्चिदानंद सहाय ने खरीद लिया था। यह सच्चिदानंद सदन के नाम से जाना जाता है पर आजकल यहां सेंट फ्रांसिस पब्लिक स्कूल चल रहा है। इसके पास ही नेमिचंद्र जैन गर्ल्स स्कूल है जो 1975 में बना था। यह मोहल्ला अब काफ़ी घना हो गया है और इसके कई मकान जर्जर हो गए हैं। इसी मोहल्ले में हिंदी के प्रथम जीवनी लेखक बाबू शिवनंदन सहाय का घर था, जो अब बिक गया है। इसी मोहल्ले में नेमिचंद्र जैन शास्त्री गर्ल्स हाई स्कूल भी है और एक पुराना मोहन सिनेमा भी है। यह मोहल्ला मैदान के पास ही है और आरा नागरी प्रचारिणी सभा के ठीक पास इसकी एक गली है।

आरा शहर में कई ऐसे मोहल्ले हैं जो जातियों तथा पेशे के नाम पर हैं। मिश्र टोली उसमें एक है। इसी मोहल्ले में हिंदी के प्रथम गद्य लेखक सदल मिश्र

का भी घर था पर आज उनके परिवार का कोई भी आदमी इस मोहल्ले में नहीं रहता है। अन्य मोहल्लों में चिक टोली, महाजन टोली, मिल्की मोहल्ला, अहिरपुरा तथा विंद टोली भी है। पुरानी कचहरी के पास पुराना अदावत मोहल्ला भी है।

अब आरा शहर में कई मोहल्ले तथा टोलियां और हाते हैं। महाराजा हाता, हरिजी का हाता, मदनजी का हाता, वैद्यनाथ सहाय का हाता नामक मोहल्ले हैं। इसी तरह महावीर टोला, शीतला टोला और करमन टोला जैसे मोहल्ले भी हैं। रेलवे स्टेशन के ठीक पास नवादा मुहल्ला है तो उसके पास ही राजेंद्र नगर मोहल्ला है।

1872 में आरा शहर की आबादी 37,386 थी जो 1931 में बढ़कर 48,922 हो गई। आबादी कम बढ़ने का कारण यह भी था कि 1901 में पटना और आरा शहर में बड़े पैमाने पर प्लेग फैला जिसमें लोग शहर छोड़कर चले गए। बाद में आबादी में तेज़ी से वृद्धि हुई और 1981 की जनगणना के अनुसार शहर की आबादी 64,205 हो गई। आबादी बढ़ने का कारण यह भी रहा कि आज़ादी के बाद प्रशासनिक ढांचा विकसित हुआ। शहर में नए कॉलेज और स्कूल खुले तथा व्यापारिक गतिविधियां बढ़ीं और आस–पास के गांवों से लोग आकर आरा शहर में बसने लगे। लेकिन आरा शहर में उस तरह उद्योग धंधे नहीं खुले और उनका विकास उस तरह नहीं हुआ जिस तरह जमशेदपुर, रांची तथा डेहरी ओन सोल का हुआ। यह शहर मुख्यतः छोटे व्यवसाय और प्रशासनिक वर्ग का रहा। यहां वकील, मुख्तार, डॉक्टर, क्लर्क, शिक्षक तथा व्यवसायी रहे। कचहरी होने के कारण जिले भर के मुकदमे यहां लड़े जाते थे। 1951 में 64,205 की आबादी में 38 प्रतिशत यानी 25,617 लोग साक्षर थे।

1942 में एच.डी. जैन कॉलेज, 1954 में महाराजा कॉलेज और 1959 में जगजीवनराम कॉलेज तथा 1959 में ही महादेवानंद महंत महिला कॉलेज के खुलने से शहर में शिक्षा का प्रचार–प्रसार तेज़ी से हुआ और इससे एक नया विकसित मध्यवर्ग भी पैदा हुआ।

आरा शहर के विकास और प्रगति में रेल लाइनों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। दिल्ली हावड़ा लाइन पर मुगलसराय और पटना के बीच यह एक महत्त्वपूर्ण रेल स्टेशन था जहां प्रमुख गाड़ियां रुकती थीं। आरा स्टेशन 1857

के बाद 1862 में दानापुर, मुगलसराय रेल खंड के खुलने के बाद अस्तित्व में आया तब इकहरी लाइन ही थी। 1868 में आरा से बक्सर तथा बिहिया से आरा तक दोहरीकरण का कार्य संपन्न हुआ। 6 मार्च, 1911 को मार्टिन लाइट रेलवे छोटी लाइन के खुलने से आरा और सासाराम के बीच भी आवागमन शुरू हुआ।

आरा मुख्यतः कपड़े, गन्ने और उपभोक्ता सामानों का ही बाज़ार रहा। उसके बाद मांस–मछली और होटल–रेस्तरां का बाज़ार रहा। 1958 में यहां 2,406 दुकानें पंजीकृत थीं जो 1962 तक 2,884 हो गईं। आरा शहर में भारत–पाक विभाजन के बाद पाकिस्तान से भी काफ़ी लोग आए थे जो कपड़े का व्यवसाय करने लगे। उन्हें 500 से पांच हज़ार रुपये देकर सरकार ने पुनर्वास किया था।

आरा को बसाने में जैन लोगों का बड़ा योगदान है। वैसे शाहाबाद जिले में छठवीं सदी में ही जैन धर्म का प्रसार रहा। इसके कई अभिलेख भी मिलते हैं। लेकिन वर्तमान में जैनियों का इतिहास 450 वर्ष पुराना है। आरा के पास मसरख में जो यहां से छह किलोमीटर दूर है, एक प्राचीन जैन मंदिर है जो सम्राट हर्ष के समय का है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इसका ज़िक्र किया है। आरा के बाबू शंकरलाल ने भी 1819 विक्रम संवत में पारसनाथ मंदिर बनाया था। आरा और इसके आस–पास के इलाकों में करीब 44 मंदिर हैं।

आरा शहर में जैन संस्थानों तथा मंदिरों एवं धर्मशाला के निर्माण में देव कुमार जैन तथा हर प्रसाद जैन का बड़ा योगदान है।

बाहुबलि जैन मंदिर जैन वाला विश्राम के परिसर में ही है। यह उत्तर भारत का पहला बाहुबलि जैन मंदिर है। 1902 में हर प्रसाद जैन ने 24 तीर्थंकर की मूर्ति बनवाई थी जिसके लिए जयपुर से शिल्पकार आए थे। जैनियों ने जैन स्कूल, एच.डी.जैन कॉलेज तथा जैन धर्मशाला एवं संग्रहालय तथा पुस्तकालय खोलकर शहर को एक मानवीय चेहरा प्रदान किया। लेकिन धीरे–धीरे जैनियों की भूमिका कम होती गई और अन्य समुदाय के लोग व्यवसाय, शिक्षा एवं प्रशासन में आगे आने लगे जिससे उनका वर्चस्व बढ़ता गया और उनकी भागीदारी भी शहर में बढ़ती गई।

चौक और गलियों का शहर

आरा शहर जिस तरह बहुत सारे टोले और टोलियों में बंटा है और तरह–तरह के हातों के मुहल्ले हैं, उसी तरह यह शहर चौकों और गलियों को भी अपने भीतर समेटे है। हर शहर में आपको कोई न कोई चौक मिल जाएगा। ये चौक शहर की रौनक होते हैं। यहां पर आम जीवन धड़कता है और चौक के इर्द–गिर्द बाजार भी होते हैं। आरा के चौक भी काफ़ी मशहूर हैं।

अगर इसे चौक का शहर कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। और हर चौक का अपना इतिहास और अपनी कहानी है। हर चौक पर एक धड़कती हुई ज़िंदगी है। यह अलग बात है कि ज़्यादातर चौक शहर के भीड़–भाड़ वाले इलाके में है और यह काफ़ी तंग सड़कें हैं जहां अक्सर गाड़ियों की चिल्ल–के मची रहती है। विशेषकर शाम को यहां अक्सर भीड़ नज़र आती है। फिर भी चौक ही शहर के मुख्य आकर्षण हैं।

अगर गोपाली चौक को सबसे अधिक व्यस्त और महत्त्वपूर्ण कहा जाए तो यह अनुचित नहीं होगा। स्टेशन से गोपाली चौक तक बनी सड़क ही शहर

आरा शहर के एक मॉल का दृश्य

की मुख्य सड़क मानी जाती हैं। कहा जाता है कि पहले वहां गोपाली कुंआ था। दरअसल इस शहर के नामी गिरामी स्वर्णकार का नाम गोपाली था जिसके नाम पर यह गोपाली चौक नाम पड़ा। धरमन चौक और शीशमहल चौक काफ़ी पुराना है। कहा जाता है कि धरमन चौक 1857 के पहले का है। धरमन और करमन बाबू वीरकुंवर सिंह की दो माशूकाएं थीं। एक के नाम पर करमन टोला पड़ा तो दूसरे के नाम पर धरमन चौक का नामकरण हो गया। धरमन चौक के पास अभी भी पांच–छह कोठे हैं जहां नर्तकियां रहती हैं। ये शादी विवाह में नाचकर अपना गुज़ारा करती हैं।

इसके अलावा शहर के दो–तीन और चौक हैं। उसमें एक नवादा चौक है तो दूसरा पकड़ी चौक लेकिन गोपाली चौक या शीशमहल चौक अधिक लोकप्रिय है। इसके अलावा एक शहीद चौक भी है जहां जिला कांग्रेस का दफ़्तर है। इस दफ़्तर का नाम भी शहीद भवन है जो 1942 की क्रांति में शहीद हुए लोगों की स्मृति में बना है। यह भवन 1956 में बना था। शिवपूजन शास्त्री और सुमित्रा देवी (जो आरा की कई बार विधायक रह चुकी हैं) ने उसे बनाया था। 21 जनवरी को हर साल उस भवन का स्थापना दिवस भी मनाया जाता है। यहां जगजीवन राम, रामसुभग सिंह और इंदिरा गांधी भी आई हुईं हैं।

आरा शहर के पुराने मुहल्लों में आप जाएंगे तो कई गलियां मिलेंगी। कुछ गलियां इतनी संकरी हैं कि वहां साइकिल चलाना भी मुश्किल है लेकिन इन गलियों में लोग मोटरसाइकिल भी चलाते नज़र आते हैं। इन गलियों को देखकर कई बार बनारस की गलियां याद आ जाती हैं। ऐसी गलियां पटना सिटी के इलाके या सब्जी बाग या *परवतियां* कुआं के पास भी नज़र आती है।

शहर में केवल एक ही पार्क है जो रमना मैदान से सटा है। पहले इस पार्क का नाम लालकुंआ था लेकिन अब वहां वीरकुंवर सिंह की प्रतिमा लग गई है और उसका नाम वीर कुंवर सिंह पार्क हो गया है। इसका उद्घाटन ज्ञानी जैल सिंह ने किया था। पहले इस पार्क में बने तालाब में बोटिंग भी होती थी और मछली पालन भी होता था लेकिन अब इस तालाब का रख–रखाव उतना ठीक नहीं है और वहां का पानी बहुत गंदा है। इस पार्क में ताड़, आम तथा नारियल के पेड़ भी हैं। 23 अप्रैल को हर साल विजयोत्सव के दिन वीरकुंवर सिंह की याद में एक सरकारी समारोह होता है जिसमें किसी अति–विशिष्ट व्यक्ति को आमंत्रित किया जाता हैं।

इस शहर के बीचो–बीच रमना मैदान है जो इस शहर की जान है। जिस तरह पटना में गांधी मैदान है, उसी तरह यह रमना मैदान है लेकिन अब कुछ सालों में यह मैदान उतना साफ–सुथरा और सुंदर नहीं रहा। एक तो इस मैदान में एक स्टेडियम बन गया जिससे यह मैदान छोटा हो गया और कई जगह मैदान का अतिक्रमण भी देखा गया है।

एक ज़माने में रमना मैदान में चारों तरफ पेड़ हुआ करते थे। दो कुएं भी वहां थे जिनमें एक कुआं बंद हो गया तथा दूसरा सूख गया। यह एक ऐतिहासिक मैदान है और यहां कई सभाएं आज़ादी से पहले भी हुई थीं। आज़ादी के बाद भी इसी मैदान में सभाएं होती हैं। रमना मैदान में 1995 में नरसिंह राव भी आए थे। उनसे पहले इंदिरा गांधी भी दो–तीन बार आईं थीं। राजीव गांधी भी प्रधानमंत्री के रूप में आरा आए थे। इसके अलावा सोनिया गांधी भी 2005 में आई थीं।

शहर का बदलता चेहरा

आज़ादी के बाद देश के कई शहरों का विकास होने से उनके चेहरे बदल गए हैं। यह अलग बात है कि ज्यादातर बदलाव महानगरों तथा राज्यों की राजधानियों में हुए परंतु भारत के कस्बों में उतनी तेज़ी से बदलाव नहीं हुआ। इसका कारण यह भी रहा कि विकास की गतिविधियां और योजनाएं महानगरों तथा राजधानियों में ज़्यादा केंद्रित रहीं। इसके पीछे वहां की राजनीतिक सत्ता, नौकरशाही तथा आर्थिक गतिविधियों का विशेष हाथ है। इसलिए विकास की छाया कस्बे में देर से पहुंची। विकास दरअसल उन्हीं शहरों तथा कस्बों का अधिक हुआ जहां उद्योग–धंधे खुले तथा व्यापारिक क्रियाकलाप अधिक फले–फूले। देश के योजनाकारों ने भी उन्हीं शहरों को पहले अधिक विकसित होने दिया जो अधिक बसे हुए थे। फिर भी कई कस्बों में भी विकास हुआ। यह अलग प्रश्न है कि यह विकास किसके लिए और उसका स्वरूप क्या है? इस विकास से अधिक लाभान्वित कौन हुआ।

देश की नई आर्थिक नीति और संचार क्रांति के बाद छोटे शहरों तथा कस्बों में एक तरह का ऊपरी विकास नज़र आता है। शहर में एक खास वर्ग की समृद्धि दिखाई देती है। इसकी एक झलक आरा शहर में भी देखने को मिलती है चूंकि शहर में पर्याप्त योजना न होने तथा शहर की बुनावट में एक खास किस्म की बेतरतीबी के कारण यह विकास बहुत संतुलित नहीं नज़र आता है। फिर भी पिछले ढाई–तीन दशकों से आरा शहर का चेहरा बदल गया है। शहर की आबादी में वृद्धि के कारण भी यह शहर अब अधिक भीड़–भाड़वाला दिखाई देता है। गांवों से भी अधिक लोगों के पलायन के चलते इस शहर में भीड़ बढ़ी हुई दिखाई पड़ती है। कचहरी, शैक्षणिक संस्थानों तथा मिनी अस्पतालों एवं डॉक्टरों की बढ़ती संख्या से भी शहर में आसपास के इलाकों से लोगों की यहां आवाजाही लगी रहती है। इसने भी शहर के रंग और मिज़ाज़ को बदलने की कोशिश की है।

आरा शहर में पचास और साठ के दशक में कॉलेजों तथा स्कूलों आदि के खुलने विकसित एवं नौकरीपेशा वर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग का दायरा बढ़ा है। इस कारण से कई मुहल्लों में नए आवास बने। हरिजी का हाता, महाराजा हाता, मदनजी का हाता, राजेंद्र नगर, प्रोफेसर कॉलोनी जैसे मोहल्लों में

इसकी एक झलक दिखाई देती है। अब बिहार के अन्य शहरों की तरह मॉल कल्चर तथा अपार्टमेंट कल्चर भी धीरे–धीरे विकसित होने लगा है। चंदवा के पास हाउसिंग कॉलोनी भी नई कोठियों का मोहल्ला है।

करमन टोला, कौला बाग पकड़ी, बीबीगंज, नागरी प्रचारिणी सभा के इलाके में मॉल, मेगा मार्ट और बाज़ारों के शोरूम भी देखे जा सकते हैं। नागरमल्ल बाज़ार, कोलकाता बाज़ार में एक नई बाज़ार संस्कृति की झलक दिखाई देती है।

आरा शहर में पिछले तीन दशकों में कार एवं मोटरसाइकिलों की संख्या में काफ़ी तेज़ी आई है। हीरो होंडा आदि के शोरूम भी खुल गए हैं। शहर की लड़कियां स्कूटी चलाकर स्कूल एवं कॉलेज भी जाने लगी हैं। यह एक नया परिवर्तन है। कभी इसी शहर में बग्घी में बैठकर पर्दे के भीतर रहते हुए लड़कियां स्कूल जाती थीं या फिर रिक्शे से जाती थीं। अब वहां काफ़ी तादाद में लड़कियां साइकिल चलाकर स्कूल जा रही हैं और कॉलेज भी स्कूटी से पहुंच रही हैं।

एक दूसरा बदलाव यह भी दिखाई दे रहा है कि शहर में निजी अस्पतालों, नर्सिंग होम तथा क्लीनिकों की संख्या में भी काफ़ी बढ़ोतरी हुई है। यह परिघटना बिहार के सभी कस्बों तथा शहरों में देखी जा सकती है। इसका मुख्य कारण है कि शहर में सरकारी चिकित्सा व्यवस्था अपर्याप्त होना है। इसकी वजह से निजी अस्पताल और नर्सिंग होम काफी खुले हैं। शहर में जगह–जगह दवा की दुकानें हैं। दवा की इतनी दुकानें देखकर लगता है कि आरा शहर एवं आस–पास के इलाकों में लोगों के स्वास्थ्य को लेकर स्थिति बहुत संतोषप्रद नहीं कही जा सकती है। प्राइवेट डॉक्टरों की बढ़ती संख्या से भी शहर में एक तरह का बदलाव दिखता है। इन डॉक्टरों की मनमानी कमाई से जो समृद्ध आई हैं और उसकी झलक उनकी कोठियों तथा मकानों में है।

शहर में एक दूसरा बदलाव यह दिखता है कि प्राइवेट स्कूलों की संख्या में काफ़ी बढ़ोतरी हुई है और यह सभी शहरों में दिखाई देता है। उसका भी कारण यह है कि शहर में सरकारी स्कूलों की स्थिति उतनी बेहतर नहीं है, बल्कि पहले से खराब हुई है। एक ज़माना था जब जिला हाईस्कूल, टाउन स्कूल, क्षत्रिय स्कूल तथा मॉडल स्कूल शहर के श्रेष्ठ स्कूल माने जाते थे और शहर की बड़ी–बड़ी विभूतियां इन स्कूलों से पढ़कर निकलीं जिनमें कई राष्ट्रीय स्तर के नेता, लेखक, अधिकारी बने पर आज इन स्कूलों में शहर के

मध्यवर्ग के बच्चे नहीं पढ़ते और यह स्थिति लगभग सभी शहरों में देखी जा सकती है।

एक तीसरा बदलाव यह भी नज़र आता है कि शहर में कोचिंग इंस्टीट्यूट भी काफ़ी खुल गए हैं। शहर के संपन्न वर्ग के लोग अपने बच्चों को आईआईटी, मेडिकल तथा सिविल सर्विस की परीक्षाओं में उत्तीर्ण कराने के लिए इन कोचिंग संस्थाओं का सहारा लेते हैं।

इस शहर में बदलाव को इस तरह से भी रेखांकित किया जा सकता है कि शहर में पेट्रोल पंपों की संख्या आठ–नौ हो गई है जबकि एक ज़माने में दो–तीन पेट्रोल पंप ही थे। आरा नागरी प्रचारिणी सभा के ठीक सामने जो पेट्रोल पंप है, वह शहर का सबसे प्रसिद्ध पेट्रोल पंप है।

शहर में अब रोटरी क्लब तथा रेडक्रॉस सोसाइटी के भी दफ़्तर हैं तथा कई गैर–सरकारी संगठन भी सक्रिय हैं जिन्होंने शहर के सामुदायिक जीवन को प्रेरित या प्रभावित किया है तथा लोगों को सुविधा भी प्रदान की है।

शहर में कई पुराने स्टूडियो हैं तो कुछ नए स्टूडियो भी खुल गए हैं। इसी तरह टेलरिंग की नई और पुरानी शॉप आज भी देखी जा सकती हैं।

शहर का जनजीवन

आम तौर पर शहर का जनजीवन सुबह की सैर और चाय की चुस्कियों से शुरू होता है। आरा शहर में सुबह–सुबह जन–जीवन इसी तरह शुरू होता है। होटल रीगल की खिड़कियों से मैंने इस शहर को इसी तरह दिन की शुरुआत करते हुए देखा है। ठीक सामने शहीद चौक और उसके पास रमना मैदान में तथा वीर कुंवर सिंह पार्क में सैकड़ों लोग टहलते हुए दिखाई देते हैं। शहीद चौक ही नहीं, लगभग हर मुख्य चौक के आस–पास चाय की दुकानें हैं जहां लोग बैठकर सुबह की चाय की चुस्कियां लेते हुए दिखाई देते है। उसी समय स्कूल की बसें भी आती हैं और हर मुख्य मुहल्ले के सामने स्कूल ड्रेस में लड़के एवं लड़कियां दिखाई देते हैं। उनके साथ उनके माता–पिता या अभिभावक होते हैं।

भारत के लगभग हर शहर एवं कस्बें में जीवन प्रतिदिन इसी तरह प्रारंभ होता है। साइकिल की बजती घंटियां, मोटरसाइकिलों तथा बस की हार्न सुबह–सुबह सुनाई पड़ती है। रमना मैदान के इर्द–गिर्द चारों तरफ सड़कों पर भी लोगों को सैर करते देखा जा सकता है। शहर के चौकों तथा सड़कों के इर्द–गिर्द लिट्टी– चोखे तथा चाय की बहुत दुकानें हैं। समाज के निचले तबकों के लिए यह रोजगार का साधन भी है। यही कारण है कि सुबह–सुबह ऐसी सैकड़ों दुकानों में ज़िंदगी की शुरुआत इसी तरह होती है।

शहर का व्यस्ततम इलाका गोपाली चौक

आरा शहर में जहां एक ओर संपन्नता है तो दूसरी तरफ़ गरीबी भी है। समाज का एक बड़ा तबका गैर–संगठित क्षेत्र में काम करता है और स्व–रोजगार में लगा है। इसलिए सुबह–सुबह इस तबके के लोगों को अपनी दैनंदिन गतिविधियों में सक्रिय देखा जा सकता है। कई जगह चाँपाकल पर भी इन तबकों के लोगों को देखा जा सकता है। शहर में पाइप से पानी की जलापूर्ति कुछ ही इलाकों में होती है ज़्यादातर इलाकों में लोग भूमिगत पानी ही इस्तेमाल करते हैं, चाहे वह चांपाकल या बोरिंग के जरिए।

जैसे–जैसे दिन आगे बढ़ता है, शहर की अन्य दुकानें भी खुलने लगती हैं और सुबह दस बजे तक प्रायः सभी दुकानें खुल जाती हैं। इसी तरह दफ़्तरों, बैकों, स्कूलों तथा कॉलेजों एवं व्यावसायिक केंद्रों पर काम करने वाले घर से निकल जाते हैं और तब सड़कों पर भीड़ दिखाई देने लगती हैं तथा कई मार्गों पर जाम भी लग जाता है। पिछले दो–तीन दशकों में शहर की आबादी में वृद्धि तथा सड़कों पर यातायात तथा वाहनों के बढ़ने से मार्ग व्यस्त भी हो गए हैं। शहर की अपनी कोई परिवहन व्यवस्था न होने से आम लोग भी रिक्शा और टैंपो पर ही चलते हैं। शहर की युवा आबादी का एक–तिहाई हिस्सा मोटरसाइकिल तथा स्कूटी पर चलता है। स्टेशन पर उतरते ही सवारी या तो रिक्शा लेती है या टैंपो लेती है। कई सड़कों पर ट्रैफिक जाम के कारण यातायात का एक मार्ग ही खुला रहता है। गोपाली चौक इलाके में दस–ग्यारह बजे और फिर शाम को भी सड़कें जाम हो जाती हैं। शहर के रेहड़ी पटरी वालों की संख्या में भी काफ़ी वृद्धि हुई है। वे अक्सर सड़कों के आस–पास अपनी रेहड़ियां लगा देते हैं क्योंकि उनके लिए आजीविका का एकमात्र यही साधन है। यह देश के अन्य कस्बों और शहरों का भी आम दृश्य है। पहले की तुलना में अब शहर में लड़कियां और स्त्रियां भी काफ़ी संख्या में बाज़ार, दफ़्तर या स्कूल – कॉलेज जाने लगी हैं। पिछले तीन दशकों में लड़कियां पढ़ने–लिखने में आगे आ रही हैं। वे आई.आई.टी., मेडिकल और अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने लगी हैं तथा उन्हें सफलताएं भी मिल रही हैं। इसने भी शहर के जन–जीवन तथा परिदृश्य को काफ़ी बदला है। स्कूटी और स्कूटर पर भी लड़कियों को देखा जा सकता है।

शहर में कई नए होटल भी खुल गए हैं। आरा शहर के संपन्न वर्ग के लोगों ने होटल उद्योग में भी हाथ बढ़ाया है। तीन दशक पहले शहर में एक–दो अच्छे होटल थे, आज शहर में आठ–दस होटल खुल गए हैं और वे अच्छा व्यवसाय भी कर रहे हैं।

शहर के मध्यवर्ग का एक हिस्सा अन्य शहरों की तरह होटलों तथा रेस्तरांओं में रात का भोजन सपरिवार करने लगा है। यह संस्कृति आरा शहर में भी दिखाई देती है। इसलिए गर्मियों के दिनों में भी सड़कों पर यहां काफ़ी चहल–पहल दिखाई देती है। इसलिए सुनसान और निर्जन स्थान कम हैं क्योंकि ज्यादातर इलाके रिहायशी इलाके हैं। शहर में मंदिर और मस्जिदों की भी संख्या काफी है। कई मंदिरों में पूजा–पाठ तथा प्रवचन एवं पाठ के कार्यक्रम अक्सर होते रहते हैं।

शहर के जन–जीवन में एक तरह का सामुदायिक सौहार्द और सद्भाव भी दिखाई देता है। यहां सांप्रदायिक तनाव या संघर्ष की घटनाएं विरल हैं। इस दृष्टि से यह शांतिपूर्ण शहर है लेकिन जातीय एवं वर्गीय संघर्ष की झलक यहां बीच–बीच में दिखाई पड़ जाती है। शहर अभी पूरी तरह आधुनिक नहीं हो पाया है और एक अर्ध–सामंती मूल्य व्यवस्था तथा संस्कृति भी यहां नज़र आती है पर पिछले तीस साल में इस शहर में नई संस्कृति विकसित हो रही है।

शिक्षा और संपन्नता के साथ अच्छी नौकरी की चाह में शहर के लोगों का पलायन भी काफी हुआ है। कई प्रशासनिक अधिकारी, पुलिस अधिकारी, अकादमिक जगत से जुड़े लोगों में से लोग अब आरा शहर छोड़कर दूसरे शहरों तथा महानगरों में भी बस गए हैं। फिर भी शहर में एक कस्बाई जीवन की गंध महसूस की जा सकती है, जहां बड़े शहरों की तुलना में अधिक आत्मीयता है।

शहर के लोगों की मुख्य भाषा भोजपुरी और हिंदी है। भोजपुरी भाषी होने के कारण यह शहर अपनी एक खास संस्कृति लिए हुए है। शादी–ब्याह, रीति–रिवाज और नाचगानों में भोजपुरी संस्कृति की छौंक रहती है। लेकिन जो लोग अधिक संपन्न तथा समृद्ध हैं, वे अब होटलों में भी शादी–ब्याह करने लगे हैं और छेका तथा जन्मदिन के समारोह भी आयोजित करने लगे हैं।

पहले इस तरह के समारोह एवं आयोजन कम होते थे लेकिन अब यह लगभग हर शहर में देखा जा सकता है। शादी–ब्याह में पारंपरिक गीत–गाने और रीति–रिवाज अभी भी व्याप्त हैं।

दस–ग्यारह बजे तक यह शहर सोने लगता है और सुबह–सुबह उठ जाता है। अभी इस शहर की गति मंथर रही है और जीवन ठहरा हुआ है। चूंकि

शहर का भूगोल छोटा है, इसलिए आप कुछ ही घंटों में इस शहर को नाप सकते हैं लेकिन 70 के दशक के बाद से इस शहर के भूगोल में भी काफ़ी बदलाव आया है और चंदवा इससे मिल गया है। रेलवे लाइन से उस पार भी शहर फैलने लगा है।

किसी भी शहर के जन–जीवन में खेल का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। खेल–कूद से लोगों के स्वास्थ्य में न केवल सुधार होता है, बल्कि उनमें आत्मविश्वास भी पैदा होता है। इससे नेतृत्व क्षमता टीम भावना भी के साथ–साथ पैदा होती है। इस शहर ने देश को जगजीवनराम के रूप में एक उप–प्रधानमंत्री दिया तथा डॉ. रामसुभग सिंह के रूप में नेहरूजी के मंत्रिमंडल में एक मंत्री भी दिया। बलिराम भगत इस शहर के सांसद रहे, भले ही वह आरा के नहीं थे लेकिन वह भी डॉ. रामसुभग सिंह की तरह केंद्रीय मंत्री बने। इसके अलावा इस जिले के दो–दो व्यक्ति मुख्यमंत्री बने लेकिन खेल पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। यूं तो बिहार में ही खेल–कूद पर विशेष ध्यान नहीं है। यही कारण है कि राज्य से केवल दो खिलाड़ी भारतीय क्रिकेट टीम में आए दलजीत सिंह तथा रमेश सक्सेना। इनके बाद कोई भी व्यक्ति क्रिकेट टीम में नहीं रहा। सबा करीम तथा कीर्ति आज़ाद ज़रूर बिहार के रहे पर वे दिल्ली से खेलते थे। भोजपुर जिले के मझांवा गांव के शिवनाथ सिंह ने ज़रूर ओलंपिक में जाकर भारत का प्रतिनिधित्व किया तथा मैराथन में दसवां स्थान प्राप्त किया। वह तेहरान एशियाड में दो स्पर्धाओं में क्रमशः स्वर्ण तथा रजत पदक भी जीत चुके हैं। वह आरा शहर के नहीं थे लेकिन उन्होंने शहर के खिलाड़ियों को प्रेरणा ज़रूर दी। शहर में खेल के मैदान या तो महाराजा कॉलेज या रमना मैदान में ही हैं। शहर में एक स्टेडियम ज़रूर बन गया है, पर शहर के अन्य हिस्सों में खेल के मैदान नहीं होने तथा बुनियादी सुविधाओं के अभाव में खेल के क्षेत्र में शहर ने राष्ट्रीय स्तर पर कोई विशेष पहचान नहीं बनाई परंतु जैन स्कूल के एक प्राचार्य – गिरिराज जैन और एच.डी. जैन कॉलेज अंग्रेजी के अवकाश प्राप्त प्रो. कमलानंद सिंह ने शहर में खेल की गतिविधियों को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

वालीबाल और बैडमिंटन में कुछ अच्छे खिलाड़ी सामने आए, लेकिन मुख्य रूप से फुटबाल ही शहर का खेल है। क्रिकेट तथा फुटबॉल की कई प्रतियोगिताएं यहां होती रहती हैं। कई खिलाड़ियों ने राज्य एवं विश्वविद्यालय स्तर पर शहर का प्रतिनिधित्व किया है।

स्वास्थ्य सेवाओं का बुरा हाल

एक विकासशील देश होने के नाते और चिकित्सा पर पर्याप्त धन खर्च न होने के कारण भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का बुरा हाल है। अगर सकल घरेलू उत्पाद की दृष्टि से देखें तो करीब एक प्रतिशत ही सरकार स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करती है। ज़ाहिर है, इतनी कम राशि के ख़र्च होने से यह पूरा स्वास्थ्य सेक्टर निजी अस्पतालों का चरागाह बन गया है। *हिंदू* अखबार में छपी ताजा रिपोर्ट के अनुसार 2013–2014 में देश में 4.2 लाख करोड़ रुपये स्वास्थ्य पर ख़र्च किया गया है। इनमें 3.06 लाख करोड़ रुपये लोग खुद ख़र्च किए। इसमें केवल 20 प्रतिशत ही सरकार ख़र्च करती है जबकि 2004–05 में वह 22 प्रतिशत ही ख़र्च करती थी। इस पूरे ख़र्च में 35.67 प्रतिशत दवा पर और 21.0 प्रतिशत ख़र्च रोग आदि पर होते हैं।

स्वास्थ्य पर सरकार के कम ख़र्च होने के कारण देश के सभी शहरों में निजी अस्पताल और नर्सिंग होम गली–गली में खुल गए हैं। इससे आरा शहर भी अछूता नहीं है। बिहार की राजधानी पटना में तो अधिक संख्या में प्राइवेट नर्सिंग होम और अस्पताल खुल गए हैं। सरकार ने अब देश के प्रत्येक राज्य की राजधानी में एक एम्स जैसा अस्पताल खोलने की घोषणा की है। पटना में एक एम्स तथा इंदिरा गांधी आयुर्विज्ञान संस्थान के खुलने से स्वास्थ्य सुविधा में वृद्धि तो हुई है पर जिलों में स्वास्थ्य सेवा की हालत अभी सुधरी नहीं है।

आरा शहर में स्वास्थ्य सेवा का जायजा लेने से पहले थोड़ा इतिहास भी जान लिया जाए कि आज़ादी से पहले आरा जिले में किस तरह की सुविधाएं उपलब्ध थीं।

शाहाबाद जिला 1765 में बना था। ईस्ट इंडिया कंपनी के फ्रांसिस बुकानन ने 1812–13 में इस इलाके का दौरा किया था। उसने जिले में स्वास्थ्य सेवाओं का ज़िक्र करते हुए लिखा है कि जिले में तब केवल दो ऐसे ब्राह्मण डॉक्टर थे जो डॉक्टर के अलावा चिकित्सा का अध्यापन करते थे जबकि 103 दवा देने का काम करते थे। मुस्लिम समाज में यूनानी चिकित्सा पद्धति लोकप्रिय थी। जगदीशपुर में जड़ी–बूटियां काफ़ी थीं। 1857 के बाद जिले में कुछ अस्पताल तथा डिस्पेंसरियां खुली थीं। डब्ल्यू.डब्ल्यू. हंटर ने लिखा है कि 1872

में शाहाबाद जिले में छह डिस्पेंसरियां थीं जिनमें एक आरा शहर में भी थी। आरा शहर में 1860 में पहली डिस्पेंसरी खुली थी। बक्सर में 1866 में तथा सासाराम में 1865 में डिस्पेंसरी खुली थी जबकि डुमरांव में 1871 में।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में प्लेग और हैजा फैलने के कारण इस जिले में लाखों लोग मरे थे। 1918 में 1,03,468 लोग मरे थे। आज़ादी के बाद 1952 से 1959 तक करीब दो लाख से अधिक लोग मलेरिया के कारण मरे थे।

आरा शहर में 1860 में खुली डिस्पेंसरी ही सदर अस्पताल बन गया। सदर अस्पताल में ओपीडी सेवा 1933 में शुरू हुई। 1937 में अस्पताल का लेबर वार्ड खुला।

1940 में इंडियन मेडिकल एसोसिएशन की एक शाखा आरा में भी खुली। 1945 में सदर अस्पताल में 100 बिस्तर थे। 1952 में 10 बिस्तरों वाला एक टी.बी. केंद्र भी खुला। प्रथम पंचवर्षीय योजना में 13 बिस्तर को मंजूरी मिली। 1955 में 20 और बिस्तरों को शामिल करने की मंजूरी मिली और बाल कल्याण केंद्र भी खुला। 10 बिस्तर बच्चों के लिए जोड़े गए। 1958 में एक इनफ़ेक्शन सेंटर भी खुला। 1959 में ब्लड ट्रांसफ़्यूज़न केंद्र भी इस अस्पताल में खुला। 1964 में इस अस्पताल में एक डिप्टी सुपरिंटेंडेंट, छह सहायक सर्जन, दो महिला सर्जन में थे। 1962 तक आउटडोर मरीज़ों की संख्या 65,580 तक हो गई।

आज इस अस्पताल में एक शव संरक्षण गृह भी है और यह सुविधा केवल आरा में ही है। इस अस्पताल को 150 प्रमाणपत्र भी मिल चुके हैं। 12 बिस्तरों वाला एक इमरजेंसी वार्ड भी है। एक एड्स सलाह केंद्र भी है। इसके अलावा एक ब्लड बैंक भी है। तीन साल पहले आयुर्वेद तथा होम्योपैथ चिकित्सा का एक केंद्र भी इस अस्पताल में खुल चुका है।

अस्पताल में मलेरिया, पोलियो, टी.वी., फाइलेरिया, कुष्ठ रोग के इलाज और परिवार नियोजन आदि की व्यवस्था है। 2010 में अस्पताल में एक सिटीजन चार्टर भी लागू हुआ। लेकिन पूरे जिले में 27 लाख की आबादी को देखते हुए इस अस्पताल पर मरीजों का बोझ बहुत है। स्वीकृत बिस्तरों की संख्या 300 हैं पर 172 बिस्तर ही चालू हैं। डॉक्टर केवल 30 हैं। 8 बिस्तर गहन चिकित्सा कक्ष में हैं। ऑपरेशन थियेटर में चार ही बिस्तर हैं। 2009 में नया ओपीडी भी खुला है। 2009 में इस अस्पताल की मरम्मत पर 1.67 करोड़ रुपये ख़र्च किए गए। लेकिन इतना कुछ होते हुए भी अस्पताल में गंदगी

काफ़ी है और कई भवन इतने पुराने तथा ज़र्ज़र हो गए हैं कि उनमें पर्याप्त रख–रखाव की व्यवस्था नहीं दिखती है।

सदर अस्पताल की हालत खस्ता होने के कारण ही शहर में प्राइवेट नर्सिंग होम अधिक खुलने लगे। 1970 के दशक में शहर में केवल एक प्राइवेट अस्पताल था लेकिन अब उनकी संख्या काफ़ी बढ़ गई है।

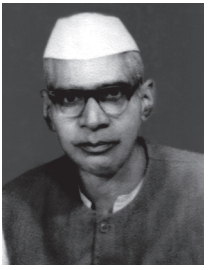

आरा शहर में कुछ ऐसे डॉक्टर भी हुए जो साहित्यप्रेमी और साहित्यकार भी थे। इनमें एक डॉ. ईशा थे तो दूसरे बनारसी प्रसाद भोजपुरी। भोजपुरी जी ने अपने जीवन के अंतिम 20 वर्ष होम्योपैथिक एवं बायोकेमिक चिकित्सा में गुज़ार दिये। उनकी गिनती शहर के प्रमुख होम्योपैथिक डॉक्टरों में होती थी। उन्होंने होम्योपैथी पर एक हज़ार पृष्ठ का ग्रंथ भी लिखा था।

आरा में पत्रकारिता

बिहार की सांस्कृतिक नगरी होने के कारण आरा में हिंदी और उर्दू की पत्रकारिता की शुरुआत बीसवीं सदी के आरंभ में हो गई थी। दरअसल, हिंदी नवजागरण का प्रभाव आरा में व्यापक रहा जिसके कारण शहर के अनेक लेखकों ने पत्र–पत्रिका की शुरुआत की। आरा नागरी प्रचारिणी सभा, जैन पुस्तकालय तथा बाल पुस्तकालय के परिवेश में यह पत्रकारिता पल्लवित–पुष्पित हुई और इसकी नींव रखने वालों में अधिकतर हिंदी के ही लेखक थे। बिहार में बिहारशरीफ के निवासी केशवराम भट्ट द्वारा 1874 में प्रकाशित *बिहार बंधु* के कोलकाता से प्रकाशन होने से राज्य में पत्रकारिता की नींव पहले ही रखी जा चुकी थी। 1912 में इस शहर से *मनोरंजन* नामक पत्रिका निकली जिसके संपादक ईश्वरी प्रसाद शर्मा थे जो आचार्य शिवपूजन सहाय के गुरु तथा हमउम्र सखा भी थे। इस पत्र में उस दौर के महत्त्वपूर्ण लेखकों ने अपनी रचनाएं दी थीं। अगर *मनोरंजन* की पुरानी फ़ाइलें सहज रूप से उपलब्ध होतीं तो इस पत्र की भूमिका तथा योगदान को रेखांकित किया जा सकता था।

1914 में *जन सिद्धांत भास्कर* नामक पत्रिका के प्रकाशन की शुरुआत हुई जो अभी तक निकल रही है। 1920 में आरा से साहित्यिक पत्र *राम* भी निकला था लेकिन इस पत्रिका के बारे में अब विशेष जानकारी नहीं मिलती है। 1921 में *मारवाड़ी सुधार* पत्रिका निकली थी जिसके बारे में शिवपूजन सहाय ने अपने संस्मरणों में लिखा है। उन्होंने अपनी पत्रकारिता की शुरुआत इसी पत्रिका से की थी। यह पत्रिका भी कोलकाता से ही छपती थी। शिवजी ने लिखा है कि आरा नगर में तीन मारवाड़ी नवयुवक नवरंग लाल तुलस्यान, हर प्रसाद जालान और दुर्गाप्रसाद पोद्दार ने 1920 में मारवाड़ी सुधार समिति की स्थापना की थी। *मारवाड़ी सुधार* इसी संस्था का मासिक मुखपत्र था।

आरा में साप्ताहिक पत्र *पाटलिपुत्र* भी निकला था। सकलनारायण शर्मा के संपादन में आरा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा *नागरी हितैषिणी* भी निकली। बाद में *शोध* पत्रिका भी निकाली। यह गंभीर एवं शोधपरक पत्रिका रही है जिसमें हिंदी के कई महत्त्वपूर्ण लेखकों ने लेख एवं निबंध लिखे।

आरा के प्रमुख पत्रकारों में बाबू बनारसी प्रसाद भोजपुरी की गिनती होती है जो न केवल स्वतंत्रता सेनानी थे, बल्कि उपन्यासकार तथा व्यंग्यकार भी थे। ईश्वरी प्रसाद शर्मा और सकल नारायण शर्मा के बाद की पीढ़ी में भोजपुरी का योगदान महत्त्वपूर्ण है। भोजपुरी जिले के बड़हरा गांव में 1904 में जन्में भोजपुरी जी ने अपनी पत्रकारिता की शुरुआत 1925 में पटना से प्रकाशित होने वाले *देश* साप्ताहिक में प्रूफ रीडर के रूप में की थी। आरा से 1937 में *स्वाधीन भारत* पत्र भी निकला था जिसके संपादक भोजपुरीजी ही थे। इसके प्रधान संपादक रामायण प्रसाद थे। इस अखबार का प्रवेशांक 'सम्मेलन अंक' के रूप में निकला था और बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में इसका लोकार्पण हुआ था। इस सम्मेलन के सभापति मुहम्मद यूनुस थे और इसमें पत्रकार तथा कहानी सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था जिसमें हिंदी पत्रकारिता के पितामह बाबू विष्णुराव पराड़कर तथा उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी एवं जाने–माने इतिहासकार जयचंद विद्यालंकार ने भाग लिया। इस पूरे सम्मेलन के स्वागत अध्यक्ष हिंदी के प्रसिद्ध शैलीकार और उपन्यासकार राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह थे। भोजपुरी के पौत्र एवं हिंदी के वरिष्ठ लेखक अरविंद कुमार के अनुसार *स्वाधीन भारत* को प्रकाशित करने में आर्थिक दिक्कतों का सामना करना पड़ा था। प्रवेशांक की छपाई तो स्थानीय सरस्वती प्रिटिंग वर्क्स लिमिटेड के द्वारा की गई थी पर दूसरे अंक से यह हैंड प्रेस पर निकलने लगा था। हैंड प्रेस से पत्र निकालना आसान काम न था क्योंकि एक तो छपाई अच्छी नहीं होती थी, दूसरे उसे निकालने में जी–तोड़ परिश्रम करना पड़ता था। फिर भी पत्र नियमित रूप से निर्धारित समय पर निकलने लगा था और धीरे–धीरे ग्राहकों की संख्या भी अच्छी ख़ासी हो गई थी।

रामनिहाल गुंजन के अनुसार आज़ादी के बाद 1955 में *नागरिक* नामक पत्रिका भी निकली थी और उसमें उनकी पहली कविता छपी थी। आरा के रघुवंश नारायण सिंह ने *भोजपुरी* नामक पत्रिका का भी संपादन किया था। इस पत्रिका ने आरा शहर तथा जिले में भोजपुरी के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। धीरे–धीरे पत्र की ख्याति फैलने लगी थी। चूंकि रामायण प्रसाद सांसद थे, इसलिए संसद के अधिवेशन चलने के कारण अधिकतर वह दिल्ली में रहते थे, इसलिए सारा काम भोजपुरी जी ही करते थे। भोजपुरी जी की मेहनत के कारण एक साल के भीतर यह अखबार बर्मा, मलाया, सिंगापुर तथा दक्षिण अफ्रीका तक पहुंचने लगा था पर संख्या बढ़ने से छपाई की दिक्कतें होने लगीं। इस पत्र पर कर्ज इतना बढ़ गया और

इसके प्रबंधन के भीतर खींचतान आदि के कारण यह पत्र बाद में बंद हो गया।

आज़ादी के बाद आरा शहर में पटना के अखबार *आर्यावर्त, प्रदीप, सर्चलाइट* और *इंडियन नेशन* की तरह कोई अखबार नहीं निकला। तब शहर के लोग पटना के अखबार ही पढ़ते थे और इन अखबारों का सभी शहरों में संजाल बिछा था।

लेकिन बाद में जैसे–जैसे पत्रकारिता अधिक पेशेवर हो गई तथा क्षेत्रीय अखबारों का विस्तार होता गया, बिहार में *प्रभात खबर, पाटलिपुत्र* टाइम्स जैसे अखबारों ने *आर्यावर्त* तथा *प्रदीप* का स्थान लेना शुरू किया और नवें दशक में बिहार में पत्रकारिता का पूरा परिदृश्य बदल गया। पटना में *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* तथा *हिंदुस्तान* टाइम्स प्रकाशन समूह के प्रवेश से नई तरह की पेशेवर पत्रकारिता शुरू हो गई। बाद में अन्य क्षेत्रीय अखबारों ने भी पैर पसार लिए। इसका नतीजा यह हुआ कि बिहार के अन्य शहरों में भी इन अखबारों के संस्करण निकलने लगे। 1986 में ही *हिंदुस्तान* अखबार निकलना शुरू हुआ। फिर 1995 में आरा से *प्रभात खबर* अखबार भी निकलने लगा और उसी वर्ष *जागरण* भी प्रकाशित होने लगा। *जागरण* की प्रसार संख्या *प्रभात खबर* से अधिक थी। 1995 में पहले राष्ट्रीय सहारा भी निकलना शुरू हुआ। फिर अंग्रेजी के *टाइम्स ऑफ इंडिया* तथा *हिंदुस्तान टाइम्स* ने भी आरा शहर पर एक–एक पेज निकालना शुरू किया लेकिन *प्रभात खबर, जागरण* तथा *भास्कर* के बाकायदा कार्यालय शहर में हैं।

इन अखबारों के आने से शहर में पत्रकारिता के बीच एक स्वस्थ प्रतियोगिता शुरू हो गई। फिर कुछ चैनलों के रिपोर्टर भी यहां काम करने लगे। इस तरह दो–ढाई दशक में आरा में पत्रकारिता के स्वरूप में काफ़ी बदलाव आया है। इन अखबारों के कारण शहर की समस्याएं काफ़ी स्थान पाने लगीं और प्रशासन भी सचेत और सतर्क हुआ है। उन पर इस मीडिया का दबाव भी काम करने लगा है जिससे उनकी कार्यशैली पर असर पड़ा है। इन अखबारों ने शहर के स्मारकों, पार्कों, ऐतिहासिक महत्त्व के पुस्तकालयों तथा भवनों की उपेक्षा पर प्रशासन का ध्यान खींचना शुरू किया जिससे शहरवासियों को फ़ायदा हुआ। शहर की नई पीढ़ी भी अपनी ऐतिहासिक विरासतों से परिचित हुई। मीडिया में साहित्य को भी काफ़ी स्थान मिलने लगा। जिला प्रशासन और उससे जुड़े अधिकारियों के अलावा स्थानीय नेताओं तथा राजनीतिक दलों की गतिविधियों की खबरें प्रमुखता से छपने लगीं। इससे

शहर में जागरूकता भी बढ़ी और शहर की जनता को अपनी अभिव्यक्ति का एक मंच भी मिला।

इन अखबारों के अलावा शहर से कई लघु पत्रिकाएं भी बीच–बीच में निकलती रहीं। उनमें कुछ आज भी ज़िंदा हैं। चूंकि आरा शहर में हर पीढ़ी के लेखक शुरू से रहे, इसलिए यहां गतिविधियां काफ़ी रहीं।

आरा नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका *शोध* ने तो कई महत्त्वपूर्ण अंक निकाले। यह पत्रिका 1979 से निकलनी शुरू हुई। इस पत्रिका से जुड़े लोगों में नेमिचंद शास्त्री, राजाराम जैन और भोजपुरी जी रहे। इस पत्रिका में हिंदी, संस्कृत भोजपुरी भाषा एवं साहित्य पर कई शोधपरक लेख छपे। नागरी प्रचारिणी सभा ने इससे पहले *साहित्य पत्रिका* भी निकाली। शोध ने प्रेमचंद और भोजपुरी जी पर सुंदर विशेषांक भी निकाले।

सत्तर के दशक में 1971 में हिंदी के तेजस्वी एवं कर्मठ अभिव्यक्ति चंद्रभूषण तिवारी ने *वाम* जैसी चर्चित पत्रिका भी निकाली जिसके मात्र तीन अंक ही निकले लेकिन वे काफ़ी चर्चा में रहे। इस पत्रिका ने हिंदी को आलोक धन्वा जैसा प्रतिभाशाली कवि भी दिया। इससे पहले 1970 में ही गुंजनजी ने *विचार* निकाला था। चंद्रभूषण के बाद मित्र अनंत कुमार सिंह ने भी पत्रिकाएं निकालकर इस परंपरा को आगे बढ़ाया। युवा कवि अरुण शीतांश भी *देशज* निकालकर शहर में साहित्यिक परिवेश को जीवंत बनाए रखते हैं।

अनंत कुमार सिंह की पत्रिका *जनपथ* ने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई है। उसने कई नये लेखकों को सामने लाने का प्रयास किया है।

शहर के कला पुरुष : लल्लन बाबू

अगर किसी शहर की सड़कें, इमारतें, दुकानें, कल–कारखाने, स्कूल, कॉलेज अस्पताल आदि उसके बुनियादी ढांचे को निर्मित करते हैं तो कला और संस्कृति उसकी आत्मा को बनाते हैं। इस आत्मा के बगैर शहर की सांस नहीं धड़कती है, चाहे वह कितना भी सुंदर और समृद्ध हो। बिहार में दरभंगा और मुजफ्फ़रपुर की तरह आरा शहर कला और संस्कृति के मायने में समृद्ध रहा है। यहां केवल साहित्य और रंगमंच ही नहीं बल्कि कला और संगीत की गतिविधियां भी रही हैं। यह अलग बात है कि इन गतिविधियों को राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर रेखांकित भले ही न किया गया हो, लेकिन पटना को छोड़कर राज्य का शायद ही कोई ऐसा शहर होगा जहां संगीत और नृत्य की इतनी महान विभूतियों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया हो। शायद यही कारण है कि आरा को छुटकी बनारस भी कहा जाता है। लखनऊ, बनारस और जयपुर तो शुरू से ही नृत्य और संगीत के प्रमुख केंद्र रहे। कथक में लखनऊ, जयपुर और बनारस घराने की धूम भी रही है। आरा में भले ही कोई घराना न रहा हो, लेकिन बिहार में दरभंगा महाराज के बाद लल्लन जी ही दूसरे शख्स थे जिन्होंने नृत्य संगीत को अपने शहर में वर्षों संरक्षण दिया और उनके नेतृत्व में कई समारोह तथा आयोजन भी हुए। दरभंगा ध्रुपद का एक प्रमुख केंद्र रहा तो आरा कलाकारों के लिए तीर्थस्थल रहा। देश का ऐसा कौन सा नामी–गिरामी कलाकार है जो इस शहर की धरती पर न आया हो। इसका श्रेय लल्लनजी को ही जाता है। अगर उन्हें शहर का संस्कृति पुरुष या कला पुरुष कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिस तरह सदल मिश्र हिंदी गद्य की पहचान हैं और बाबू जगजीवन राम ने राजनीति में आरा को पहचान दिलाई, उसी तरह लल्लन जी ने भी नृत्य संगीत के क्षेत्र में इस शहर को एक विशिष्ट पहचान दिलाई। लेकिन दुर्भाग्यवश राष्ट्रीय स्तर पर उनको जितनी ख्याति मिलनी चाहिए थी, नहीं मिली और उनकी स्मृति में शहर में कोई स्थल भवन या प्रतिमा आदि नहीं है। अब तो इस शहर की नई पीढ़ी विस्मृति की कगार पर पहुँच गई है। फिर भी प्रसिद्ध नाटककार श्याम मोहन अस्थाना की पुत्री कावेरी अस्थाना ने, जो खुद एक अच्छी लोक गायिका है, उनकी स्मृति को संजोए रखा है।

27 जुलाई 1901 को भोजपुर के जमीरा गांव में जन्मे लल्लनजी का पूरा नाम शत्रुघ्न प्रसाद सिंह था लेकिन वह लल्लनजी के नाम से ही मशहूर थे। उनके पिता जमीरा के ज़मींदार बाबू हितनारायण सिंह थे जो खुद ध्रुपद गायक तसद्दुक हुसैन के शिष्य थे। पिता ने जब अपने पुत्र में संगीत के प्रति दिलचस्पी देखी तो उन्होंने लल्लनजी को बलिया के मृदंग वादक देवकीनंदन पाठक और बनारस घराना के तबला वादक विभू मिश्र एवं काशी के तबलावादक उस्ताद हसन बख्श से तालीम दिलवाई। हितनारायण सिंह खुद ध्रुपद गायक थे और उनके पुत्र अपने पिता के साथ ही तबले पर संगत करने लगे। मात्र 19 वर्ष की आयु में उन्होंने अपना पहला कार्यक्रम स्वतंत्र मृदंग वादन कोलकाता में पेश किया था। उसके बाद छोटी–मोटी महफिलों से वह अपनी प्रतिभा से लोगों का ध्यान खींचने लगे और उसके बाद उनकी ख्याति पूरे देश में फैलने लगी। मृदंग और तबले के साथ–साथ उन्होंने कथक भी सीखा था। पंडित पद्म विभूषण बिरजू महाराज के पिता अच्छन महराज ने भी लल्लन जी को नृत्य में प्रशिक्षित किया था। लल्लन जी ने अपनी मृदंग वादन की प्रतिभा का परिचय कोलकाता के अलावा उदयपुर, लखनऊ, दिल्ली, बनारस एवं अन्य शहरों में भी दिया था। धीरे–धीरे उनकी जमीरा कोठी देश का प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र बन गई और कई कलाकार उनके यहां आने लगे। पंडित ओंकारनाथ ठाकुर से लेकर गोपीकृष्ण जैसे मशहूर कलाकार जमीरा कोठी आते थे। लल्लनजी का आतिथ्य स्वीकार करने वालों में वी.वी. पुलस्कर, गुदई महाराज, वी.वी. जोग, कंठे महाराज, हीराबाई बड़ोदकर, विनायक राव पटवर्धन, सितारा देवी, दमयंती जोशी और अनोखे लाल जैसे चोटी के कलाकार थे जिन्होंने भारतीय नृत्य संगीत के क्षेत्र में ऐतिहासिक योगदान दिया है। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि लल्लन जी कला के कितने पारखी थे और देश के महान कलाकार उनका कितना सम्मान करते थे और उनके निमंत्रण को टाल नहीं सकते थे। लल्लन जी के इन सभी दिग्गज कलाकारों से निजी संबंध थे और ये कलाकार भी लल्लन जी की जमीरा कोठी में मेहमान बनने के लिए आतुर रहते थे।

लल्लन जी के शिष्यों की भी बहुत बड़ी फौज थी। करीब 30–40 ऐसे कलाकार हुए जिन्होंने लल्लनजी से नृत्य एवं तबलावादन में प्रशिक्षण प्राप्त किया और प्रांतीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई। इनमें से कई कलाकारों ने राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रम भी पेश किए। कहा जाता है कि एक बार लल्लन जी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के सामने भी अपना कार्यक्रम पेश किया था और नेहरू जी का ध्यान अपनी ओर खींचा था। लल्लन

जी ने आरा शहर में मारुत नंदन शाहाबाद संगीत संघ की स्थापना भी की थी और जिसके तत्वावधान में एक संगीत विद्यालय भी चलता था। यह राज्य के पहले संगीत विद्यालय के रूप में जाना जाता है।

लल्लन जी द्वारा स्थापित संगीत संघ ने 1950 में शहर के *रूपम* सिनेमाघर में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का आयोजन भी किया था। आरा के वरिष्ठ पत्रकार शमशाद प्रेम के अनुसार शहर के प्रबुद्ध नागरिकों सर्वश्री कृष्णनंदन सहाय, गज्जू बाबू, अश्विनी कुमार सिन्हा, शंकर बाबू आदि ने भी संगीत सम्मेलन के आयोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। कई बार तो रूपम सिनेमाघर के अलावा मोहन सिनेमा तथा हर प्रसाद जैन कॉलेज में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन हुए थे। यह सम्मेलन दो–तीन दिन तक होते थे। इसमें ओंकारनाथ ठाकुर, बिस्मिल्ला खां के अलावा निखिल बनर्जी, बेगम अख्तर, रसूलन बाई, हीराबाई बड़ोदकर, गिरिजा देवी, बड़े गुलाम अली खां, विनायक राव पटवर्धन, सिद्धेश्वरी देवी, डागर बंधु, पुरुषोत्तम दास जलोटा, कुमार गंधर्व, केशर बाई केलकर, परवीन सुल्ताना, उस्ताद अहमद जान थिरकवा, गोदई महाराज, किशन महाराज, कंठे महराज, सितारा देवी, रोशन कुमारी, गोपी कृष्ण जैसे लोगों ने भाग लिया था। सितारा देवी का कार्यक्रम तो काशी नागरी प्रचारिणी के सभागार में हुआ था। यह आरा शहर का सांस्कृतिक रूप से स्वर्णकाल था। डागर बंधु ने आरा शहर को लल्लन बाबू के कारण ही आरा को अपना तीर्थस्थल बताया था। इस तरह के आयोजनों से शहर में एक सांस्कृतिक चेतना फैली और जन–मानस पर एक सुंदर रचनात्मक प्रभाव भी पड़ा। इससे शहर के मानस को तैयार करने में भी इन आयोजनों ने अपनी भूमिका निभाई और शहर में एक सांस्कृतिक वातावरण भी बना।

दुर्भाग्य से लल्लन जी के बाद उनकी तरह का कोई शख्स आरा शहर में फिर नहीं हुआ जिसने कला और संगीत को संरक्षण प्रदान कर अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाई हो लेकिन अभी भी कुछ लोग शहर में हैं जो छोटे स्तर पर ही सही इस परंपरा को जगाए हुए हैं। यह ठाकुरबाड़ी की संगीत परंपरा है जिसकी अलख बक्शी विकास जगाए हुए हैं। वह बिरजू महाराज के शिष्य हैं और उन्होंने बिरजू महाराज कला आश्रम नामक एक संस्था भी खोल रखी है, जिसके माध्यम से वह छात्रों को नृत्य संगीत का प्रशिक्षण भी देते हैं। वह स्वर्गीय बक्शी कुलदीप नारायण सिन्हा के वंशज हैं। श्री सिन्हा का जन्म *मुरार* के ज़मींदार परिवार में 18 अगस्त, 1929 को हुआ था वह 1949 में एच.डी. जैन कॉलेज में सहायक लेखपाल के पद पर काम करने आए थे और

वही बस गए। वे 1942 के आंदोलन में जेल भी गए थे। उन्होंने शहर में कई प्रसिद्ध कलाकारों को भी आमंत्रित किया था। उनकी मित्र मंडली में मशहूर फिल्मी गीतकार स्वर्गीय लक्ष्मण शाहाबादी भी थे।

श्री सिन्हा की बहू विमला देवी भी शास्त्रीय गायिका थीं। ठाकुरबाड़ी प्रांगण में रामनवमी और जन्माष्टमी पर संगीत समारोह होते थे। इनमें बनारस के कलाकार भी भाग लेते थे। इन कार्यक्रमों में बनारस के तबलावादक गामाजी महाराज, लखनऊ के तबलावादक रंगनाथ मिश्र, बनारस के सितारवादक सुरेंद्र मोहन सिंह, कोलकाता की नृत्यांगना चंदा घोष और सारंगीवादक हंसाजी महाराज जैसे कलाकारों ने भी भाग लिया। इसमें अधिकतर राज्य स्तर के कलाकार थे।

अब बक्शी विकास ने ठाकुरबाड़ी की परंपरा की बागडोर संभाली है। उनके कार्यक्रमों में आरा तथा पटना के स्थानीय कलाकार भाग लेते रहे हैं लेकिन पर्याप्त सरकारी संरक्षण के अभाव में बड़े पैमाने पर समारोह नहीं हो पाते हैं। फिर भी बिरजू महाराज कला आश्रम से कई नई प्रतिभाएं सामने आई हैं और इस संस्था ने कई पुरस्कार भी शुरू किए हैं। 2 फरवरी, 1988 में जन्मे बक्शी विकास तबला बजाने के अलावा ठुमरी भी गाते हैं। उन्होंने कई नृत्य नाटिकाएं भी पेश की हैं। उनके प्रयासों से 2009 में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन आरा में हुआ था। उन्होंने 2011 में लल्लनजी की स्मृति में एक अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का भी आयोजन किया था। इनसे शहर को काफ़ी उम्मीदें हैं। प्रशासन से पर्याप्त मदद न मिलने के कारण शहर में सांस्कृतिक वातावरण फिर से निर्मित करना कठिन होता जा रहा है। इस शहर की चेतना में संस्कृति का राग अभी भी धीमे स्वर में ही सही मगर गूंज रहा है।

शहर के भूले–बिसरे लोग

आरा शहर में जितनी विभूतियां हुईं, उतनी विभूतियां बिहार के किसी और शहर में शायद ही हुई होंगी लेकिन उनमें से कई लोगों को शहर ने भुला दिया है। आज पुरानी पीढ़ी के लोग मसलन 80 वर्षीय रामनिहाल गुंजन तो उन विभूतियों को जानते हैं लेकिन बाद की पीढ़ी को अपने शहर की विभूतियों के बारे में पूरी जानकारी नहीं है। मैंने यही पाया कि इस शहर की आम जनता वीर कुंवर सिंह और जगजीवन राम को तो जानती है, लेकिन अब उन्हें यह नहीं मालूम कि सर सच्चिदानंद सिन्हा जो संविधान सभा के अध्यक्ष थे और जिन्हें आधुनिक बिहार का निर्माता कहा जाता है, का जन्म न केवल आरा शहर में ही हुआ था, बल्कि उन्होंने स्कूल की पढ़ाई भी आरा शहर में की थी। लेकिन इसी आरा शहर के पास के गांव के डॉ. रामसुभग सिंह जो नेहरू जी के मंत्रिमंडल में मंत्री भी थे, बलिराम भगत जो आरा के सांसद रहे और लोक सभा के अध्यक्ष तथा रेलमंत्री भी रहे, को भी आज की पीढ़ी नहीं जानती। इसका कारण यह है कि शहर में इन हस्तियों की स्मृति में न तो कोई चौक, प्रतिमा या कॉलेज या मुहल्ला ही है और न ही उनकी याद में कोई समारोह आदि ही होते हैं। कुछ ऐसी विभूतियां भी जिनका जन्म आरा शहर में तो नहीं पर वे इस शहर में वर्षों रहे और उन्होंने अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्ष यहां गुज़ारे तथा नौकरियां भी कीं। उनमें राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह तथा शिवपूजन सहाय शामिल हैं लेकिन आज की नई पीढ़ी को इन लोगों के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं है। इन लेखकों की स्मृति में भी कभी कोई आयोजन नहीं होता है।

दुःखद यह है कि जो लोग इसी शहर में रहे और जिन्होंने अपना जीवन यहां गुज़ारा तथा साहित्य एवं समाज को बहुत कुछ दिया, उनके बारे में भी शहर के लोग अब नहीं जानते। सदल मिश्र, अखौरी यशोदानंद, शिवनंदन सहाय, जैनेंद्र जैन, ब्रजवल्लभ जी, देवेंद्र कुमार जैन, रामदहिन मिश्र, सकल नारायण शर्मा, ईश्वरी प्रसाद शर्मा जैसे लेखकों के बारे में नई पीढ़ी के युवा नहीं जानते।

इसी तरह भगवती राकेश, ब्रजनंदन सहाय और श्याम मोहन अस्थाना, आरवी साहब, भोजपुरी के कवि कैलाश, रमता जी, हीरा ठाकुर भी अब विस्मृत हो रहे हैं। बनारसी प्रसाद भोजपुरी की स्मृति में उनके पौत्र अरविंद कुमार ने पुरस्कार शुरू कर और कभी–कभार आयोजन कर शहर को यह अहसास दिलाने की कोशिश की है कि इस छोटे से कस्बे में गांधीवादी मूल्यों में आस्था रखने वाला एक पत्रकार तथा लेखक कभी इस शहर की आत्मा हुआ करता था।

इनमें से कई लेखकों को राष्ट्रीय स्तर पर वह पहचान नहीं मिली जो उन्हें मिलनी चाहिए थी और उनका सही मूल्यांकन भी नहीं हुआ। इस उपेक्षा के सर्वाधिक शिकार जैनेंद्र किशोर जैन रहे जिन्होंने करीब 45 पुस्तकें भारतेंदु युग में लिखीं, लेकिन रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में उनका ज़िक्र तक नहीं किया। भारतेंदु के बाद वह हिंदी के सबसे प्रमुख नाटककार थे और उन्होंने आरा में नाट्य मंडली की भी स्थापना की, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं बल्कि प्रांतीय स्तर भी उनकी चर्चा नहीं होती। शहर के साहित्यकार जितेंद्र कुमार, रामनिहाल, गुंजन जी, नीरज सिंह, जैनेंद्र किशोर जैन की अक्सर चर्चा करते हैं और इस बात पर आश्चर्य भी करते हैं कि उनका ज़िक्र रामचंद्र शुक्ल ने क्यों नहीं किया। शुक्ल जी ने अपने इतिहास में आरा शहर के तीन व्यक्तियों की ही चर्चा की जिनमें सदल मिश्र, शिवनंदन सहाय शामिल हैं पर सदल मिश्र के बारे में यह भी नहीं लिखा कि वह आरा के थे।

1871 में जन्में महामहोपाध्याय सकल नारायण शर्मा प्रेमचंद और प्रसाद से बड़े थे। शिवपूजन बाबू ने लिखा है कि वह हिंदी के उद्भट लेखक, वक्ता तथा पत्र संपादक थे लेकिन हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका नाम तक नहीं है। रामचंद्र शुक्ल ने उनका नाम नहीं लिया जबकि मिश्रबंधु के इतिहास में उनका नाम एवं परिचय दोनों मिलते हैं। शर्मा ने *सिद्धांत प्रकाश, प्रेमतत्व, व्याकरण, आरा पुरातत्व, सृष्टि तत्व* जैसी पुस्तकें लिखी थीं। उन्होंने *राजरानी* तथा *अपराजिता* नामक दो मौलिक उपन्यास भी लिखे थे लेकिन ये सहज रूप से उपलब्ध नहीं हैं। वे खड्ग विलास प्रेस, पटना से प्रकाशित *शिक्षा* के संपादक भी थे। उनके प्रयासों से ही कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिंदी को स्थान मिला।

1874 में जन्मे शिवनंदन सहाय के पुत्र ब्रजवल्लभ जी आरा में 42 वर्षों तक वकील रहे। वह आरा नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक प्रधानमंत्री भी थे।

उन्होंने *नागरी हितैषिणी, समस्यापूर्ति प्रकाश, शिक्षा* तथा *प्रेमाभक्ति प्रचारक* पत्रिकाओं का भी संपादन किया था। मैथिलीशरण गुप्त ने उनके उपन्यास *सौंदर्योपासक* को हिंदी का प्रथम उपन्यास बताया था जो 1910 में छपा था। वह हिंदी का प्रथम गद्य काव्यात्मक उपन्यास भी था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने *सरस्वती* में इस उपन्यास पर मैथिलीशरण गुप्त की समीक्षा भी छापी थी। उन्होंने नाटक तथा प्रहसन भी लिखे थे। वह कवि भी थे। कंस का मर्दन उनका अंतिम नाटक था। वह श्यामसुदर दास, बालमुकुंद गुप्त तथा प्रताप नारायण मिश्र के मित्र थे। 1950 में राजेंद्र प्रसाद अभिनंदन ग्रंथ के लोकार्पण के मौके पर राजेंद्र बाबू की उपस्थिति में उन्हें आरा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा विद्या वाचस्पति की उपाधि दी गई थी। उन्होंने बंकिमचंद्र के उपन्यासों का अनुवाद किया था। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने ही विद्यापति को बिहार का निवासी प्रमाणित किया था। *मैथिल कोकिल* विद्यापति को उनकी पुस्तक आरा नगरी प्रचारिणी ने छापी थी। इससे पहले उन्हें बंगाल का कवि बताया जाता था।

बाबू शिवनंदन सहाय, उनके पुत्र व्रजवल्लभ जी तथा सकल नारायण शर्मा के बाद जो तीसरी बड़ी हस्ती हुए, वे पंडित ईश्वरी प्रसाद शर्मा थे। उनका जन्म 1893 में हुआ था और उसी वर्ष शिवपूजन जी का भी जन्म हुआ था, लेकिन शिवपूजन जी उन्हें अपना गुरु मानते थे। उनका लेखन 1906 में शुरू हुआ। उनका पहला लेख *भारतजीवन* में छपा था जो काशी से निकलता था। वह आरा के कायस्थ जुबली एकेडमी स्कूल में हिंदी के शिक्षक हुए। वह इसी स्कूल के छात्र भी रह चुके थे। कुछ दिन उन्होंने काशी के हिंदू कॉलेज में भी पढ़ाई की जहां *सरस्वती* के संपादक देवीदत्त शुक्ल भी उनके सहपाठी थे। 1914 में वे *पाटलिपुत्र* के संपादक बने जो पटना से निकलती थी। उसके प्रधान संपादक मशहूर इतिहासकार काशी प्रसाद जायसवाल थे। इससे पहले 1912 में उन्होंने आरा से *मनोरंजन* भी निकाला था। वे गया से प्रकाशित पत्रिका के भी संपादक थे। इसके बाद उन्होंने *धर्माभ्युदय* भी निकाला। कोलकाता में रहते हुए उन्होंने *हिंदू पंच* नामक पत्र का संपादन किया जिसका *बलिदान अंक* बहुत चर्चित हुआ था। *हिंदू पंच* निकालने पर उन्हें जेल की भी सजा हुई थी। शिवपूजन सहाय ने लिखा है कि अनूदित, लिखित तथा संपादित पुस्तकों की संख्या कोई डेढ़ सौ होगी जबकि वे मात्र 34 वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हो गए।

उनकी प्रथम पुस्तक *चंद्रकुमार* थी, जो उपन्यास है। सिपाही विद्रोह पर भी उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण इतिहास की पुस्तक लिखी थी। *सूर्योदय, रंगीली दुनिया* उनके नाटक थे। वे संस्कृत, अंग्रेज़ी, बांग्ला, मराठी तथा गुजराती भी जानते थे। तीन महीने में उन्होंने बंगला हिंदी कोष तैयार कर दिया था। उन्होंने आरा में मनोरंजन नाटक कंपनी भी स्थापित की थी जिसने *सूर्योदय* नाटक प्रस्तुत किया था। रंगमंच पर उन्होंने शानदार अभिनय भी किया था। वे मतवाला मंडल के सदस्य भी थे।

सकल नारायण शर्मा और ईश्वरी प्रसाद शर्मा की तरह जैनेंद्र किशोर को भी लोग भूल चुके हैं। 1871 में जन्मे जैनेंद्र किशोर के बारे में शोध पत्रिका में आलोचक रामनिहाल गुंजन ने एक महत्त्वपूर्ण आलेख लिखा था। गुंजन जी के अनुसार जैनेंद्र किशोर का हिंदी का विशेष ज्ञान पं. किशोरीलाल गोस्वामी से प्राप्त हुआ था। हिंदी के कहानीकार नीरज सिंह ने बताया कि किशोरीलाल गोस्वामी कभी आरा में रहते थे और एक मंदिर में पुजारी थे लेकिन इसका साक्ष्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। जैनेंद्र किशोर ने उनसे हिंदी का ज्ञान प्राप्त किया था। किशोरीलाल गोस्वामी प्रेमचंद से पहले युग के बड़े लिक्खाड़ उपन्यासकार थे। आरा शहर के मशहूर शायर अबुल फ़ज़ल से उन्होंने उर्दू शायरी सीखी थी। जैनेंद्र किशोर ने जैन नाटक मण्डली की स्थापना की थी और वे उसके नाटकों में विदूषक की भूमिका भी खुद निभाते थे। यह 1909 से पहले की बात है। उन्होंने *जैन गजट* तथा नागरी *हितैषिणी पत्रिका* का भी संपादन किया तथा नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने जौहर नाम से *दीवाने जौहर* नामक अपनी छोटी शायरी की किताब भी छपवाई थी। उन्होंने उस ज़माने में यानी 1909 से पहले सात उपन्यास लिखे और छह नाटक। इसके अलावा तीन उर्दू नाटक और दो प्रहसन भी लिखे। उन्होंने खड्गविलास प्रेस के संस्थापक बाबू रामदीन सिंह की जीवनी भी लिखी थी। खड्गविलास प्रेस ने हिंदी नवजागरण में वही भूमिका निभाई थी जो नवल किशोर प्रेस ने निभाई थी। जैनेंद्र किशोर के पुत्र देवेश कुमार जैन भी लेखक थे। उनके बारे में शिवपूजन सहाय ने एक संस्मरण ज़रूर लिखा था पर उनमें जैनेंद्र किशोर के बारे में चर्चा नहीं है। *सत्यवती, कमलिनी, मनोरमा, सुकुमार, शरत कुमारी, दुराचारी, संयोगिनी* उनके उपन्यास हैं तो श्रीधर चरित, कलिकौतुक आदि उनके नाटक हैं। लेकिन आश्चर्य होता है कि *हिंदी साहित्य के इतिहास* में इनका नाम नहीं

है। लाला श्रीनिवासदास के 1906 में प्रकाशित उपन्यास *परीक्षा गुरु* की चर्चा होती है लेकिन जैनेंद्र किशोर के उपन्यासों की कहीं कोई चर्चा या उल्लेख भी नहीं मिलता है। आज उनके सभी उपन्यास सहज रूप से उपलब्ध नहीं हैं। हिंदी विभागों ने उन पर कोई शोध भी नहीं कराया जिससे उनके योगदान को रेखांकित नहीं किया जा सका लेकिन गुंजन जी ने सूत्रवाक्य में उनके महत्त्व को रेखांकित किया है। गुंजन जी का कहना है कि जिस प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लोभ और प्रीति, करुणा जैसे निबंध लिखे, उनसे पहले जैनेंद्र किशोर ने 1904 में *नागरी हितैषी* पत्रिका में आकृति शीर्षक लेख लिखा था जो शुक्ल जी की कोटि का निबंध है। इतना ही नहीं, उन्होंने 1906 में खगोल विज्ञान नामक पुस्तक लिखी जो संभवतः इस विषय पर हिंदी की पहली किताब थी। लेकिन उसकी भी चर्चा नहीं हुई। जैनेंद्र किशोर की एक जीवनी भी रामसकल पाण्डेय ने लिखी थी। मौलिक एवं अनूदित पुस्तक लिखने वाले जैनेंद्र किशोर भी ईश्वरी प्रसाद शर्मा की तरह अल्पायु 38 वर्ष की उम्र में ही चल बसे।

आरा शहर में राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान शिवपूजन सहाय, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जैसे लोगों ने अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाई और उनकी गिनती देश के चोटी के लेखकों में की जाती रही है पर आज़ादी के बाद कई ऐसे लोग भी आरा शहर से जुड़े रहे जिन्हें उस स्तर पर राष्ट्रीय ख्याति नहीं मिली और न ही उनके योगदान को रेखांकित किया गया। इनमें एक डॉ. नागेश्वर लाल भी थे जो एच.डी. जैन कॉलेज के छात्र थे और बाद में रांची विश्वविद्यालय में डीन में हुए। हिंदी के मशहूर आलोचक नामवर सिंह की प्रसिद्ध पुस्तक *कविता के नए प्रतिमान* की शुरुआत ही डॉ. नागेश्वर लाल से होती है। दरअसल *कविता के नए प्रतिमान* नाम से लेख नागेश्वर लाल का था। यह लेख परिमल की गोष्ठी में पढ़ा गया था और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने प्रकाशित किया था। इस पुस्तक के लेखक को नागेश्वर लाल ने यह सब बताया था। नागेश्वर लाल की एकमात्र पुस्तक *हिंदी कविता में बिम्ब विधान* नाम से छपी थी जो उनका शोध प्रबंध था लेकिन उनके निधन के बाद भी उनके सैकड़ों अप्रकाशित निबंध बचे हुए हैं।

आरा शहर में ही डॉ. देवराज उपाध्याय जैसे लेखक आलोचक भी थे जिन्होंने अज्ञेय के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया था। यह साठ के दशक

की बात है, लेकिन आज उनकी पुस्तक सहज रूप से नहीं मिलती है। देवराज उपाध्याय की आलोचना को वह महत्त्व नहीं मिला जो मिलना चाहिए था।

आरा में ही डॉ. रमेश कुंतल मेघ जैसे आलोचक और विजय मोहन सिंह जैसे कहानी के आलोचक भी थे। दोनों बाद में आरा से बाहर चले गए। रमेश कुंतल मेघ और विजय मोहन सिंह हिंदी के प्रतिष्ठित आलोचकों में शुमार किए जाते हैं। *अथातो सौंदर्य जिज्ञासा* रमेश कुंतल मेघ की चर्चित पुस्तक है और हिंदी के सौंदर्यशास्त्र पर संभवतः पहली पुस्तक भी है। विजय मोहन सिंह शिमला में हिमाचल विश्वविद्यालय में भी काम करते रहे। वह भोपाल में भारत भवन से जुड़े, फिर दिल्ली की हिंदी अकादमी के सचिव भी बने। वह साठोत्तरी पीढ़ी के महत्वपूर्ण कहानीकार और कथा आलोचक भी माने गए।

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक प्रमोद सिन्हा भी आरा के एच.डी. जैन कॉलेज में रहे। वह बाद में इलाहाबाद चले गए। वह परिमल के सक्रिय सदस्यों में थे। इलाहाबाद के बाद वह दिल्ली आकाशवाणी में भी रहे। हिंदी की चर्चित कहानीकार डॉ. ऋता शुक्ल भी मूलतः आरा की हैं। उनके पिता डॉ. रामेश्वरनाथ तिवारी वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय में हिंदी के विभागाध्यक्ष थे।

आरा की महान विभूतियाँ

बिहार के किसी एक शहर से शायद ही इतनी महान विभूतियाँ जुड़ी रहीं जितनी आरा से। यह शहर बिहार में नवजागरण का एक प्रमुख केंद्र रहा है। राजनीति और साहित्य में जो महान विभूतियाँ इस शहर ने दीं वह राज्य के इतिहास में एक अनुपम उदाहरण है। अफ़सोस इस बात का है कि आज शहर के लोगों में इसकी समृद्ध विरासत को लेकर न तो इतनी जानकारी है और न ही चिंता है। उन्हें कोई इसकी जानकारी देता है तो वे आश्चर्य में पड़ जाते हैं। वीर कुंवर सिंह और बाबू जगजीवन राम को लोग ज़रूर याद कर लेते हैं, लेकिन आज डॉ. रामसुभग सिंह और बलिराम भगत जैसे लोग विस्मृत हो गए जो कभी भारतीय राजनीति में शीर्ष पदों पर थे। इसी तरह साहित्य की दो महान विभूतियाँ आचार्य शिवपूजन सहाय और राजा राधिकरण प्रसाद सिंह को भी लोग भूल चुके हैं जिनका इस शहर से संबंध रहा और इन दोनों ने अपने जीवन के आरंभिक वर्ष यहीं गुज़ारे।

आरा हाउस

वीर कुंवर पार्क में वीर कुंवर सिंह की मूर्ति

सच्चिदानंद सिन्हा

.....जिस राज्य के निर्माता को उनकी जन्मस्थली में ही भुला दिया जाए उसे क्या कहा जा सकता है? लेकिन यह आरा शहर में हुआ। जिसके हस्ताक्षर से संविधान को अंतिम रूप दिया गया हो, उसकी स्मृति को संरक्षित करने का कोई प्रयास आज तक नहीं हुआ। उनकी स्मृति में इस शहर में सड़क, स्कूल, कॉलेज पार्क बाज़ार मोहल्ला के नाम को भी छोड़ दें, उनकी याद में कोई समारोह या व्याख्यान भी नहीं होता है। सर सच्चिदानंद सिन्हा के बारे में आज की पीढ़ी भले ही नहीं जानती हो लेकिन उनका योगदान राष्ट्र के निर्माण में अभूतपूर्व है। वह संविधान सभा के अध्यक्ष ही नहीं थे बल्कि एक कुशल पत्रकार, समाजसेवी विद्वान, वकील के साथ शिक्षाशास्त्री व पुस्तकालय आंदोलन के अग्रदूत भी थे। 10 नवम्बर, 1871 में आरा शहर में जन्मे श्री सच्चिदानंद सिन्हा, मदन मोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू, सर हसन इमाम अली इमाम, डॉ. अमरनाथ झा और महेश नारायण के गहरे मित्र थे। महात्मा गांधी उनसे मात्र दो वर्ष बड़े थे और कहा जाता है कि लंदन में वह किंग्स कॉलेज में उनके साथ पढ़ते थे। वह लाला लाजपत राय और जिन्ना के साथ 1914 में यूरोप की यात्रा पर गए थे। वे

कांग्रेस शिष्टमंडल के सदस्य भी थे। श्री सिन्हा के कारण ही बिहार बंगाल और ओड़िशा से अलग होकर एक प्रांत बना था। इस तरह वे बिहार अस्मिता के पहले प्रतीक थे। मौलाना मज़हरुल हक ब्रज किशोर प्रसाद (जे.पी के ससुर एवं बिहार कांग्रेस के अध्यक्ष), डॉ. राजेंद्र बाबू तब परिदृश्य पर नहीं उभरे थे। श्री सिन्हा का परिचय विश्वप्रसिद्ध भारतविद् मैक्समूलर से भी था। वे दादा भाई नौरोजी के चुनाव प्रचार मंत्री भी थे। श्री सिन्हा ने ही देश की राजधानी कोलकत्ता से दिल्ली करने का प्रस्ताव पेश किया था। 12 दिसंबर, 1911 को दिल्ली दरबार में ही जॉर्ज पंचम ने बिहार और ओड़िशा प्रांत के गठन की घोषणा की।

श्री सिन्हा मूलतः बक्सर जिले के मुरार गाँव के रहने वाले थे और उनके परिवार का संबंध डुमरांव के महाराजा से था। उनके पितामह संभवतः लखनऊ से आए थे क्योंकि मुरार में उनके घर को लखनऊ टोला के नाम से जाना जाता था। श्री सिन्हा के दादा बक्शी शिवप्रसाद सिन्हा डुमरांव महाराज के मुख्य राजस्व अधिकारी थे। उनका निधन 1870 में हुआ। उनके दो बेटे थे जिनमें बक्शी रामगुलाम सिन्हा का निधन 1871 में ही हो गया। दूसरे बेटे बक्शी रामानंद सिन्हा श्री सच्चिदानंद सिन्हा के पिता थे। वे सरकारी मुलाज़िम थे, लेकिन नौकरी छोड़कर वाराणसी में वकालत करने लगे। फिर बाद में आरा में बस गए और डुमरांव के महाराज ने उन्हें अपना स्थायी वकील नियुक्त कर लिया जहाँ श्री सिन्हा का जन्म हुआ। आरा शहर के प्रसिद्ध वकील हरबंस सहाय 1882 में बंगाल लेजिस्लेटिव काउंसिल के सदस्य नियुक्त होने वाले पहले व्यक्ति थे। वे श्री सिन्हा के पिता के गहरे दोस्तों में से थे। श्री सिन्हा ने *मेरे समकालीन प्रमुख बिहारी* नामक किताब में हरबंस सहाय का जिक्र किया है। इस किताब की भूमिका इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ. अमरनाथ झा ने लिखी है जो सर गंगानाथ झा के पुत्र थे और अपने पिता के ठीक बाद कुलपति का पद भार संभाला था।

श्री सिन्हा आरा जिला स्कूल के छात्र थे जिसके निर्माण के लिए बाबू कुंवर सिंह ने ज़मीन और चंदा भी दिया था। लेकिन इस स्कूल के हेडमास्टर से विवाद के कारण 1887 में पटना की टी.के. घोष अकेडमी में पढ़ने आ गए और वहां से मैट्रिक किया फिर जुलाई, 1888 में वह पटना कॉलेज के छात्र बने। आरा के जिला स्कूल में ही उनकी गहरी दोस्ती अली इमाम और हसन इमाम से हो गई थी। बाद में वे राज्य के बड़े वकील, न्यायाधीश एवं बड़ी

हस्ती बने। अली इमाम को श्री सिन्हा की तरह सर की उपाधि भी मिली। जब उन्होंने इमाम बंधुओं को 1887 में उच्च शिक्षा के लिए लंदन जाते देखा, तभी मदन मोहन मालवीय कांग्रेस के किसी काम से आरा आए तो श्री सिन्हा उनसे मिले। उन्होंने श्री सिन्हा को लंदन जाने के लिए प्रेरित किया। उनकी सलाह पर ही श्री सिन्हा ने इस संबंध में कई बड़े लोगों से पत्राचार भी किया। मालवीय जी सबको उच्च शिक्षा के लिए प्रेरित करते थे। उन्होंने जगजीवन राम को भी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में दाखिला लेने के लिए प्रेरित किया था। श्री सिन्हा उच्च शिक्षा के लिए लंदन जाने के लिए उतावले हुए लेकिन उन दिनों हिंदू परिवार में यह मान्यता थी कि समुद्र पार करना पाप है। इस नाते श्री सिन्हा के परिवार वाले उन्हें वहां नहीं भेजना चाहते थे लेकिन श्री सिन्हा अपने परिवार को बताए बिना इसकी तैयारी करते रहे। परिवार वालों को भनक लगी तो वे उन्हें फिर आरा ले आए। लंदन जाने के लिए राजा राधिकारमण सिंह के पिता एवं ब्रजभाषा के कवि तथा भारतेंदु मित्र राजा राजेश्वरी प्रसाद ने भी मदद की थी। श्री सिन्हा के पिता ने उनसे झूठ बोला कि मां की तबियत खराब है ताकि वे लंदन न जा सकें। फिर श्री सिन्हा को पढ़ने के लिए कोलकाता भेजा गया जहां उनके भतीजे वकील थे। कोलकाता में अपने पिता के दोस्त से 200 रुपये लेकर उन्होंने लंदन का टिकट कटा लिया। जब वे 26 दिसंबर, 1889 को स्टीमर पर सवार हुए तो उनकी जेब में मात्र पचास रुपये थे। वे पहले बिहारी थे जो लंदन गए।

वे 5 फरवरी, 1890 को लंदन पहुंचे। वहां वे कांग्रेस की ब्रिटिश इकाई के सदस्य बन गए। उन्होंने 1892 में दादा भाई नौरोजी के लिए लंदन में प्रचार किया। दादाभाई ब्रिटिश पार्लियामेंट के लिए चुने गए। फिर श्री सिन्हा 1893 में भारत लौटे। रास्ते में वे इलाहाबाद रुके और मालवीय जी के साथ वहां उन्होंने एक जनसभा (पटना) की। वे कोलकाता हाई कोर्ट में पंजीकरण कराकर बांकीपुर में वकालत करने लगे। उन दिनों पटना बांकीपुर के नाम से जाना जाता था। श्री सिन्हा ने लाहौर के वकील सेवाराम की बेटी राधिका से शादी की, जिसका गांव वालों ने काफी विरोध किया और जब शादी के बाद अपने गांव आए तो गांव वालों ने गंगा जल से उनके घर को पवित्र किया। लेकिन वे इससे विचलित न हुए। श्री सिन्हा प्रगतिशील विचारों के थे और अपने दृष्टिकोण में आधुनिक थे। वे एक समाज सुधारक भी थे और 1929 में दिल्ली में कायस्थ सभा के सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा एवं रूढ़ियों को तोड़ने की बात की जिसका युवकों पर

प्रभाव पड़ा। उन्होंने हिंदू विवाह वैधता विधेयक का समर्थन करते हुए बड़ी एवं छोटी जातियों के साथ विवाह की वकालत की। खराब स्वास्थ्य के कारण वे 1896 से 1906 तक इलाहाबाद में रहे। वहां उन्होंने अपना एक घर भी बनाया और वकालत करते रहे। यहीं उनकी मुलाकात तेज़ बहादुर सप्रू तथा मोती लाल नेहरु से हुई और दोनों उनके आजीवन मित्र रहे। मालवीय जी से भी उनकी मित्रता यहीं प्रगाढ़ हुई। यहीं से उन्होंने *हिंदुस्तान रिव्यू* नामक मशहूर पत्रिका निकाली। इलाहाबाद में वकील के रूप में उनकी लोकप्रियता काफ़ी बढ़ गई। लेकिन 1906 में वे फिर पटना लौट गए और वहीं बस गए। उनके मित्र सर अली इमाम भी यहां बड़े वकील के रूप में स्थापित हो चुके थे।

श्री सिन्हा जब लंदन से लौट रहे थे तो जहाज पर एक यात्री ने उनसे पूछा कि तुम किस राज्य के हो तब बिहार, बंगाल, ओड़िशा संयुक्त प्रांत था, लेकिन श्री सिन्हा ने कहा कि वे बिहार के हैं। उस व्यक्ति ने कहा कि इस नाम के किसी राज्य का नाम तो मैंने नहीं सुना है। यह बात श्री सिन्हा को चुभ गई और उन्होंने बिहार को अलग राज्य बनाने के लिए आंदोलन छेड़ने का मन बना लिया। महेश नारायण, नंदकिशोर लाल, रायबहादुर कृष्णा सहाय के सहयोग से अंत में बिहार राज्य बना जिसकी घोषणा दिल्ली दरबार में की गई। अप्रैल, 1912 में इसके लिए कानून भी बन गया। इस तरह 1894 से लेकर सत्रह साल तक उन्हें बिहार को अलग राज्य बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ा। इस बीच 1907 में महेश नारायण का निधन हो गया। महेश नारायण पत्रकार के अलावा एक कवि भी थे। उनकी कविता *स्वप्न* हिंदी की पहली स्वछंद कविता मानी गई, लेकिन निराला की 'जूही की कली' को ही पहली मुक्त छंद की कविता के रूप में आलोचकों ने मान्यता दी, महेश नारायण की तरफ लोगों का ध्यान नहीं गया। श्री सिन्हा के बिहार राज्य के गठन के अभियान में उनके बचपन के मित्र सर अली इमाम ने भी योगदान दिया था, जो उस समय सरकार में लॉ मेंबर थे। अली इमाम तब बड़ी हस्ती थे और उनका संबंध ब्रिटिश हुक्मरानों से भी था। श्री सिन्हा ने अपनी किताब *मेरे महान समकालीन बिहारी* में महेश नारायण की विस्तार से चर्चा की है। 1905 में बंगाल विभाजन के बाद बिहार के अलग होने के प्रयासों में तेज़ी आई और अंततः श्री सिन्हा को सफलता भी मिली।

श्री सिन्हा का योगदान एक पत्रकार के रूप में भी महत्त्व महत्वपूर्ण रहा। उनके लेख देश–विदेश में छपते रहते थे। लेकिन उन्होंने खुद जर्नल

निकालने की सोची। उन दिनों 1907 में रामानंद चटर्जी *मॉडर्न रिव्यू* नामक पत्रिका निकालते थे जो तब देश की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका मानी जाती थी। श्री सिन्हा ने *हिंदुस्तान रिव्यू* उसी तर्ज़ पर निकाला। इससे पहले वे *कायस्थ समाचार* निकाल चुके थे। 1900 में उन्होंने नए कलेवर में *समाचार–पत्र* भी निकाला। 1903 में उन्होंने इलाहाबाद में *इंडियन पीपुल* नामक पेपर निकाला। उन दिनों *लीडर* के संस्थापक निदेशक श्री सिन्हा थे। वे ही *लीडर* के लिए श्री सी. वाई. चिंतामणि को 1903 में इलाहाबाद लेकर आए। उनके संपादन में निकलने वाली *लीडर* की बड़ी धूम थी। श्री सिन्हा ने श्री महेश नारायण के साथ मिलकर *बिहारी टाइम्स* 1894 में ही निकाला था। इस अखबार ने बिहार के निर्माण के लिए माहौल बनाया। हसन इमाम के साथ मिलकर उन्होंने 1918 में 15 अगस्त को *सर्चलाइट* नामक अख़बार भी निकाला। वे 1921 में बिहार ओड़िसा एग्ज़ीक्यूटिव काउंसिल के सदस्य बनने तक *हिंदुस्तान रिव्यू* निकालते रहे। बाद में यह 1926 तक कोलकाता से निकला। फिर श्री सिन्हा इसके संपादक बने और अपने निधन से पहले 1950 तक वे इसे निकालते रहे। एक पत्रकार के रूप में वह 1927 में जिनेवा में अंतरराष्ट्रीय प्रेस कांफ्रेंस में भी गए।

श्री सिन्हा का योगदान एक वकील और एक पत्रकार के अलावा विधायी कार्यों में भी था। अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं विद्वत्तापूर्ण कानूनी जानकारी होने के नाते 1919 में ही वे इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल के सदस्य बन गए थे। 1920 में भी वे इसके सदस्य बने और 1921 में वे इंडियन लेजिस्लेटिव असेंबली के प्रथम डिप्टी प्रेसिडेंट चुने गए। बाद में मई में बिहार ओड़िसा गवर्नर की एक्ज़ीक्यूटिव काउंसिल के सदस्य और जुलाई में इसके अध्यक्ष भी बने। वह बिहार ओड़िशा लेजिस्लेटिव असेंबली के प्रेसिडेंट बने। श्री सिन्हा वित्त मंत्री भी बने। उन्होंने जेल में सुधार के लिए भी कदम उठाए और कैदियों की कोड़ों से पिटाई पर रोक लगाने की वकालत की और तत्कालीन गवर्नर सर हेनरी व्हीलर इस पर राज़ी हो गए। तब पांच साल तक किसी कैदी की कोड़ों से पिटाई नहीं हुई।

1927 में स्वास्थ्य खराब होने पर छह माह के लिए वे इंग्लैंड गए थे। वे 1936 में पटना विश्वविद्यालय के पहले गैर सरकारी कुलपति बने। पटना विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में बिहार असेंबली के सदस्य भी बने। वे 6 साल तक इसके कुलपति बने रहे। 1946 में वह दोबारा असेंबली के सदस्य बने। वे विपक्ष के नेता भी रहे। तीसरे गोलमेज सम्मलेन में भाग लेने

के लिए उन्हें बुलाया गया था पर खराब स्वास्थ्य के कारण वे वहां नहीं गए।

श्री सिन्हा का कांग्रेस से पुराना नाता रहा। 1888 में जब कांग्रेस का चौथा सम्मेलन इलाहाबाद में हुआ था तो उन्होंने एक दर्शक की तरह भाग लिया लेकिन 1896 में कोलकाता सेशन में एक डेलीगेट के रूप में भाग लिया फिर 1919 तक हर सत्र में भाग लेते रहे।

श्री सिन्हा हिंदुस्तानी भाषा के समर्थक थे। एक बार आचार्य शिवपूजन सहाय उनसे राजेंद्र अभिनंदन ग्रंथ के लिए राजेंद्र बाबू पर एक लेख लिखवाने के लिए मिले तो उन्होंने हिंदी की संप्रेषणीयता को लेकर भी टिप्पणी की थी। वे अंग्रेज़ी के भी समर्थक थे। वे उर्दू साहित्य के गहरे जानकार थे और इकबाल पर एक किताब लिखी थी। इसके अलावा उन्होंने कश्मीर पर एक पुस्तक *कश्मीर–एशिया का खेल मैदान* नाम से लिखी थी।

वे हिंदू मुस्लिम–एकता के प्रबल समर्थक थे और संगीत में उनकी गहरी दिलचस्पी थी। 9 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा की बैठक शुरू हुई तो उसकी अध्यक्षता श्री सिन्हा ने ही की थी। 14 फरवरी, 1950 को मूल संविधान उनके हस्ताक्षर के लिए लाया गया जिस पर उन्होंने हस्ताक्षर किए थे। उनका निधन 6 मार्च, 1950 को हो गया। आज बिहार में उनकी स्मृति में केवल पटना में उनके द्वारा स्थापित *सिन्हा लाइब्रेरी* है जिसके निर्माण के लिए उन्होंने उस ज़माने में डेढ़ लाख रुपये खर्च किए थे। इसके पीछे उनकी पत्नी की प्रेरणा थी। इस पुस्तकालय को चलाने के लिए 3 लाख रुपये से एक ट्रस्ट की स्थापना की गई। 1924 में बना यह पुस्तकालय 90 साल से अधिक पुराना है लेकिन आज इसकी स्थिति बहुत खराब है। श्री सिन्हा के नाम पर गया में केवल कॉलेज ज़रूर खुला। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने श्री सिन्हा के जन्मदिन को बिहार दिवस मनाने का राजकीय निर्णय ज़रूर लिया लेकिन आरा शहर और उनके गांव में उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने का कोई प्रयास आज तक संभव नहीं हुआ।

ckc txthou jke

आरा शहर में श्री सच्चिदानंद सिन्हा के बाद अगर कोई दूसरी महान विभूति हुई तो वे बाबू जगजीवन राम ही थे। शहर के बाहरी इलाके में चंदवा गांव में 5 अप्रैल, 1908 को एक दलित परिवार में जन्मे जगजीवन राम डॉ. अंबेडकर के बाद इस देश के दूसरे बड़े दलित नेता हुए। लेकिन उन्हें

कांग्रेस ने कभी दलित नेता के रूप में पेश नहीं किया और उन्होंने भी खुद को इस रूप में लाने की कोशिश नहीं की। तब आज की तरह समाज में दलित राजनीति उफान पर नहीं थी और कांशी राम तथा मायावती का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। जगजीवन राम देश के एकमात्र ऐसे नेता थे जो 40 साल तक केंद्र में मंत्री बने रहे। 1946 में बनी अंतरिम सरकार से लेकर नेहरू जी के मंत्रिमंडल और उसके बाद हर मंत्रिमंडल में रहे। आपातकाल के बाद जब जनता पार्टी की सरकार बनी तो वे उसमें भी मंत्री बने रहे। वे देश के उपप्रधानमंत्री रहे। आचार्य शिवपूजन सहाय के पुत्र डॉ. मंगलमूर्ति की जगजीवन राम पर लिखी किताब के विमोचन के मौके पर मीडिया में रिपोर्ट छपी। हालांकि तत्कालीन मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल ने इस बात को बेबुनियाद बताया कि जगजीवन बाबू दलित होने के कारण प्रधानमंत्री पद से वंचित रहे। उस पुस्तक के विमोचन समारोह में श्री सिब्बल ने कहा था कि जगजीवन राम सबसे अधिक समय तक रहने वाले देश के एकमात्र मंत्री रहे और उन पर भ्रष्टाचार का कोई आरोप नहीं लगा। वाकई बाबू जगजीवन राम ने एक निष्कलंक जीवन जिया। वे देश के पहले श्रम मंत्री बने फिर कृषि मंत्री, डाक तार मंत्री और रक्षा मंत्री भी बने। लेकिन उन पर कोई दाग नहीं लगा। जगजीवन राम ने आपातकाल का अंत में विरोध करते हुए कांग्रेस से त्यागपत्र भी दिया और वे जनता पार्टी की सरकार में उप प्रध ाानमंत्री के पद पर रहे।

जगजीवन बाबू भले ही स्कूल तक आरा शहर में पढ़े हों लेकिन उन्होंने अपना संसदीय क्षेत्र सासाराम ही बनाया और वे वहीं से आजीवन चुनाव लड़ते रहे। आरा से जुड़ाव बलिराम भगत और डॉ. राम सुभग सिंह का भी रहा। इस तरह तीन केंद्रीय मंत्री अकेले इस शहर ने दिए। बिहार का शायद ही कोई ऐसा जिला मुख्यालय हो जहां से तीन केंद्रीय स्तर के मंत्री बने हों। बाबू जगजीवन राम आरा शहर के महाजनी स्कूल से पांचवीं कक्षा करने के बाद टाउन स्कूल में पढ़ने लगे जहां शिवपूजन सहाय हिंदी के टीचर थे। महाजनी स्कूल में उन्होंने अछूत छात्रों के लिए मिलने वाली छात्रवृत्ति यह कहकर लेने से मना कर दिया था कि मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है, बल्कि यह राशि उच्च जाति के किसी गरीब छात्र को दे दी जाए। आरा टाउन स्कूल में भी एक ऐसी घटना हुई, जिसने उन्हें देश में दलितों के अधिकार के लिए लड़ने को प्रेरित किया। समाज में व्याप्त छुआ–छूत और भेदभाव के शिकार अंबेडकर भी हुए थे और जगजीवन राम स्कूल में हिंदू घड़े से पानी पीने के कारण प्रताड़ित। स्कूल में दलित छात्रों के लिए पानी का अलग घड़ा रखा जाने

लगा जिसे जगजीवन राम ने फोड़ दिया। फिर जब दो बार और अलग घड़े रखे गए तो जगजीवन राम ने उन्हें भी फोड़ दिया। इस घटना से स्कूल में खलबली मच गई। तब प्राचार्य को अपनी गलती का अहसास हुआ और फिर हिंदू घड़े से ही दलित छात्र पानी पीने लगे। लेकिन जिस तरह एक बार अंबेडकर को अपमान झेलना पड़ा लगभग उसी तरह जगजीवन राम को भी अपमान झेलना पड़ा जब वे केंद्रीय मंत्री रहते हुए काशी के विश्वनाथ मंदिर गए, तो उनके जाने के बाद मंदिर को गंगा जल से धोकर पवित्र किया गया। यह इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में भेदभाव और छुआछूत की जड़ें कितनी गहरी हैं! लेकिन बाबू जगजीवन राम इससे विचलित नहीं हुए, बल्कि इस तरह की संकीर्णताओं का लगातार विरोध करते रहे और महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में इस लड़ाई को आगे बढ़ाया।

बाबूजी जब आरा में मैट्रिक में पढ़ रहे थे तो एक बार मदन मोहन मालवीय आरा आए। टाउन हॉल स्कूल में उनका स्वागत किया गया। बाबूजी ने उनके सम्मान में अभिनंदन पत्र पढ़ा जिसमें उन्होंने मालवीय जी की भूरि–भूरि प्रशंसा की। यहीं पहली बार उनकी मुलाकात मदन मोहन मालवीय से हुई। उन्होंने उन्हें मैट्रिक के बाद काशी हिंदू विश्वविद्यालय में दाखिला लेने के लिए प्रेरित किया। बाबू जी ने 1926 में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। गणित तथा विज्ञान में उन्होंने शत प्रतिशत अंक पाए। बाबू जी ने काशी विश्वविद्यालय में दाखिला तो ले लिया, लेकिन उन्हें छात्रावास में भेदभाव और छुआछूत की समस्या का मुकाबला करना पड़ा। भोजनालय के कर्मचारियों ने उनके बर्तन मांजने से इंकार कर दिया तब बाबू जी ने इसकी शिकायत मदन मोहन मालवीय से की, लेकिन उन्होंने उन्हें अपना खाना खुद बनाने और खुद बर्तन धोने की सलाह दी जिससे बाबूजी क्रोधि ात हो गए और अलग मकान लेकर रहने लगे। वहां मकान मालिक ने भी उनके साथ भेदभाव और छुआ–छूत बनाए रखा जिससे वे अपमानित हुए। अंततः उन्होंने कोलकाता के विद्यासागर कॉलेज में दाखिला ले लिया। जुलाई, 1928 में उन्होंने बी.एस.सी. में दाखिला लिया और वहां राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लगे। अगस्त, 1929 में उन्होंने अखिल भारतीय रविदास सभा की स्थापना की जिसका उद्देश्य दलितों को संगठित करना और उनको शिक्षा प्रदान करना था। 1930 में उन्होंने जनवरी में कोलकत्ता में समाज सुधारकों और राजनीतिज्ञों की सभा आयोजित की जहां लाठी चार्ज में वे चोटिल हुए। कोलकाता में सुभाष चंद्र बोस से उनकी मुलाकात हुई थी। 1931 में कोलकता से बी.एस.सी. की डिग्री लेने के बाद वे अपने

गांव चंदवा आ गए। गांव में उनका खूब स्वागत–सत्कार हुआ क्योंकि वे कोलकाता में काफी लोकप्रिय हो गए थे। उनकी मां बसंती ने उनसे सरकारी नौकरी के लिए आवेदन करने को कहा तो उन्होंने उस बात को ठुकरा दिया। पटना में छूआछूत को लेकर एक सम्मेलन हुआ जिसके मुख्य अतिथि राजेंद्र बाबू थे। उस सम्मेलन में बाबू जगजीवन राम ने अपने भाषण से सबको बेहद प्रभावित किया। राजेंद्र बाबू इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गांधी जी के गोलमेज सम्मेलन से लौटने पर पत्र लिखा जिसमें जगजीवन राम के बारे में जानकारी दी और उन्हें अनमोल रत्न कहा।

गांधीजी जब गोलमेज़ सम्मेलन से मुंबई लौटे तो उनके सम्मान में एक प्रीतिभोज रखा गया जिसमें राजेंद्र बाबू के साथ बाबू जगजीवन राम भी उपस्थित हुए। गांधी जी ने जगजीवन राम को बिहार हरिजन सेवक संघ का काम देखने की जिम्मेदारी सौंप दी और उन्हें आज़ादी की लड़ाई में सक्रिय भूमिका निभाने को कहा। 01 जून, 1935 को जगजीवन बाबू का विवाह विक्टोरिया मैडल से सम्मानित कानपुर निवासी डॉ. बीरबल की पुत्री इंद्राणी से हुआ। 31 दिसंबर, 1935 को लखनऊ में हिंदू महासभा की 17वीं बैठक में बाबूजी ने भी सभा को संबोधित किया। इसके अध्यक्ष मदन मोहन मालवीय थे। 1936 में लखनऊ में ही बाबूजी ने अखिल भारतीय दलित वर्ग के तत्त्वावधान में एक बड़ी सभा का आयोजन किया जिसका उद्घाटन गांधी जी ने किया था। इस सभा की अध्यक्षता बाबूजी ने की और उन्होंने धर्म, जाति और भाषा के आधार पर देश को बांटने की ब्रिटिश सरकार की नीति की आलोचना की।

बाबूजी केवल दलितों के नेता नहीं थे बल्कि किसानों–मजदूरों के भी नेता थे। उन्होंने 1937 में अखिल भारतीय खेतिहर मज़दूर सभा की स्थापना की। उन्होंने इलाहाबाद, गोपालगंज और छपरा जिले में अखिल भारतीय दलित वर्ग का सम्मेलन आयोजित किया। वे पटना के मछुआ टोली में किराये के मकान में रहने लगे और वहीं राजनीतिक गतिविधियां करते रहे। 1937 में उनके पुत्र सुरेश का जन्म हुआ। 1940 में पटना के कदम कुआं में एक मकान बनवाना शुरू ही किया, लेकिन आज़ादी की लड़ाई में वे हज़ारीबाग जेल चले गए। 10 दिसंबर, 1940 में आरा के निकट पीरो में भाषण के दौरान उन्हें गिरफ्तार किया गया, फिर उन्हें हज़ारीबाग सेंट्रल जेल भेज दिया गया। इस जेल में जयप्रकाश नारायण और के.बी. सहाय भी थे। उनके बड़े भाई संत लाल ने गांव वालों को बताया कि जगजीवन बाबू जेल गए हैं, यह हमारे

लिए गौरव की बात है। इससे पता चलता है कि आज़ादी की लड़ाई को लेकर लोगों में क्या जज़्बा था और उस समय लोग किन जीवन मूल्यों से संचालित थे।

जेल में रहते हुए उन्होंने कई पत्र अपनी पत्नी को लिखे, जिससे उनके मानसिक संघर्ष और विचारों को जाना जा सकता है। अंततः 10 अक्तूबर, 1941 को वे जेल से रिहा हुए। जब *अंग्रेज़ो भारत छोड़ो* आंदोलन शुरू हुआ तो बाबू जी 20 अगस्त, 1942 को पटना में फिर गिरफ्तार कर लिए गए, उन्हें पहले तो बांकीपुर जेल में रखा गया जहां डॉ. राजेंद्र प्रसाद, अनुग्रह बाबू और महामाया प्रसाद भी थे। बाद में उन्हें हजारीबाग जेल भेज दिया गया। जेल में रहते हुए, वे भारतीय दलित वर्ग के फिर से अध्यक्ष चुन लिए गए। जेल में उन्हें बहुत यातनाएं दी गईं। पंद्रह माह जेल में रहने के बाद खराब स्वास्थ्य को देखते हुए उन्हें 5 अक्तूबर, 1943 को जेल से रिहा कर दिया गया। करीब डेढ़ वर्ष बाद उनकी पुत्री मीरा कुमार का जन्म 31 मार्च, 1945 को हुआ जो बाद में देश की पहली महिला लोकसभा अध्यक्ष बनीं। 02 सितंबर, 1946 को अंतरिम सरकार बनी तो बाबूजी उसमें श्रम मंत्री बनाए गए। उसमें 11 मंत्री थे, जिनमें राजेंद्र बाबू कृषि मंत्री थे। नेहरू जी विदेश मंत्री, जान मथाई वित्त मंत्री, सी. राजगोपालाचारी उद्योग मंत्री और पटेल गृह मंत्री थे। बाबू जी 1952 में संचार मंत्री बने और 1956 तक इस पद पर बने रहे। 07 दिसंबर, 1956 को वे रेल मंत्री बने और 6 अप्रैल, 1962 तक इस पद पर रहे उसके बाद फिर वे संचार तथा सड़क परिवहन मंत्री बनाए गए। 31 जनवरी, 1966 को वे दूसरी बार श्रम मंत्री बने और 12 मार्च, 1967 तक इस पद पर रहे। 13 मार्च, 1667 को वे खाद्य एवं कृषि मंत्री बने। फिर 29 जून, 1920 को वे रक्षा मंत्री बने। बाबूजी को राष्ट्रपति बनाने का प्रस्ताव 1969 में फखरुद्दीन अली अहमद ने जाकिर हुसैन के निधन के बाद किया था। इंदिरा गांधी ने उस प्रस्ताव का अनुमोदन भी किया था। कुछ लोग नीलम संजीव रेड्डी के पक्ष में थे जिनमें निजलिंगप्पा आदि प्रमुख थे। यहीं से कांग्रेस का विभाजन शुरू हुआ। अंत में निजलिंगप्पा पार्टी से निकाले गए और सी. सुब्रमनियम को इंदिरा कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। बाबूजी और फखरुद्दीन अली अहमद ने पार्टी को एकजुट करने के प्रयास किए पर निजलिंगप्पा अड़े रहे। 28 दिसंबर, 1969 को बाबूजी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। 1971 का बांग्लादेश युद्ध रक्षामंत्री के रूप में उनके नेतृत्व में लड़ा गया। बाबूजी के कारण ही 1966 में मजदूरों की ठेका प्रथा समाप्त की गई और वे श्रम मंत्री

के रूप में इस बिल को लाए। रेलमंत्री के रूप में लंबी दूरी की गाड़ियों में शयनयान की शुरुआत इन्हीं के समय हुई।

यह सच है कि जब आपातकाल लगा तो शुरू में जगजीवन राम ने खुलकर विरोध नहीं किया, लेकिन अंत में उन्होंने कांग्रेस से इस्तीफा देकर *कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी* नामक पार्टी बनाई जिसमे हेमवती नंदन बहुगुणा और नंदिनी सत्पथी भी थीं। फिर बाबूजी जे.पी. के साथ चले गए। जब जनता पार्टी की सरकार बनी, तो वे उसमें उप–प्रधानमंत्री बनाए गए। लेकिन दो साल के भीतर फिर मध्यावधि चुनाव हुआ और इंदिरा जी दोबारा प्रधानमंत्री बनी। उनकी हत्या के बाद राजीव गांधी ने देश की बागड़ोर संभाली, बाबू जी 1980 से 1986 तक विपक्ष में रहे और 6 जुलाई, 1986 को उनका निधन हो गया। इस तरह देश ने अंबेडकर के बाद दूसरा बड़ा दलित नेता खो दिया।

बाबूजी का संबंध अपने समय के न सिर्फ़ सभी बड़े नेताओं के साथ था बल्कि लेखकों से भी था। वे हिंदी के प्रबल समर्थक थे, साथ ही, वे बराबर हिंदी साहित्य सम्मेलन की सभाओं में भी जाते रहे और उसकी अध्यक्षता करते रहे। शिवपूजन सहाय, बेनीपुरी, राजा राधिकारमण, दिनकर आदि से उनका निजी संबंध था। वे बहुत अच्छी हिंदी और भोजपुरी बोलते थे। नलिन विलोचन शर्मा जैसे विद्वान आलोचक ने तो 50 के दशक में ही उन पर अंग्रेज़ी में जीवनी लिखी थी। नलिन जी आरा के जैन कॉलेज में कुछ दिनों तक शिक्षक भी रहे। इसलिए वे उन्हें करीब से जानते थे। श्री ओम प्रकाश मौर्य ने भी उन पर एक अच्छी किताब लिखी है। बाबूजी ने *कास्ट चैलेंजेज इन इंडिया* नामक एक किताब लिखी। लोकसभा सचिवालय ने उन पर एक पुस्तक निकाली है। आरा शहर में बाबूजी के नाम पर जगजीवन बाजार और जगजीवन कॉलेज है। चंदवा मोड़ पर उनकी एक प्रतिमा है। चंदवा के घर में अब कोई नहीं रहता। वहां एक डिस्पेंसरी चलती है। दिल्ली में समता स्थल पर बाबूजी के जन्मदिन पर कार्यक्रम होते हैं और उनके आवास को स्मारक बना दिया गया है.

M, jkelHkx flg

सर सच्चिदानंद सिन्हा और बाबू जगजीवन राम के बाद अगर आरा शहर से जुड़ा कोई तीसरा राष्ट्रीय स्तर का व्यक्ति राजनीति में था तो वे डॉ. राम सुभग सिंह ही थे। 7 जुलाई, 1917 को आरा के निकट खजुरिया गांव में जन्मे राम सुभग सिंह की छवि एक ईमानदार नेता की थी। उनके पिता का

नाम रामबालक सिंह था। वे पेशे से किसान थे। आज भी गाँव में उनका एक पुश्तैनी घर है लेकिन वह खस्ताहाल है और वहां कोई नहीं रहता। गांव के बाहर रामसुभग सिंह ने एक छोटा सा घर बनवाया था जहां वे दिल्ली में संसदीय जीवन गुजरने के बाद रहने लगे थे। इस मकान में उनके एक पुत्र का परिवार अब भी रहता है। श्री सिंह की पांच संतानें हुईं जिनमें चार पुत्र और एक पुत्री शामिल है। आरा शहर में उनकी स्मृति में आज कुछ भी नहीं है। बाबू जगजीवन राम की तरह वे भी निष्कलंक राजनीतिज्ञ रहे। उनकी स्कूली शिक्षा भी आरा टाउन स्कूल से हुई थी जहां जगजीवन राम छात्र रह चुके थे। रामसुभग सिंह बाबू जगजीवन राम से उम्र में 6 साल छोटे थे लेकिन कांग्रेस में उनके साथ रहे और बाबूजी की तरह केंद्रीय मंत्री बने। उस ज़माने में बक्सर के सांसद ए. पी. शर्मा भी केंद्रीय मंत्री बने थे। रामसुभग सिंह ने काशी विद्यापीठ से शास्त्री की डिग्री प्राप्त की और एम. ए. करने काशी हिंदू विश्वविद्यालय गए। फिर 1948 के आसपास यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिसोरी से पत्रकारिता में डॉक्टरेट भी किया।

श्री सिंह चार बार लोकसभा के सदस्य बने। पहली बार 1651 में शाहाबाद दक्षिण से लोकसभा में चुने गए और दूसरी बार सासाराम से चुने गए, उन दिनों सासाराम में दो निर्वाचन क्षेत्र थे। एक से बाबू जगजीवन राम और दूसरे से श्री रामसुभग सिंह विजयी हुए थे। बाबूजी 52 से 54 तक इस सीट से लोकसभा सांसद रहे। उसके बाद श्री सिंह तीसरी बार विक्रमगंज से चुने गए। आखिरी बार वे बक्सर सीट से लोकसभा के सदस्य बने। जब कांग्रेस का विभाजन हुआ तो वे कांग्रेस संगठन में चले गए। फिर वे लोकसभा में विपक्ष के पहले नेता बने थे। उसके बाद वे जे.पी. आंदोलन में जयप्रकाश नारायण के साथ रहे। इंदिरा जी से उनके रिश्ते सैद्धांतिक कारणों से खराब हो गए। फिर वे 1977 का चुनाव कांग्रेस संगठन के टिकट पर लड़े और हार गए। 1980 का चुनाव निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में वे हारे।

श्री सिंह 8 मई, 1962 से 8 जून, 1964 तक बाबू जी की तरह कृषि मंत्री रहे। 9 जून, 1964 से लेकर 13 जून, 1964 तक कुटीर उद्योग एवं सामाजिक सुरक्षा का भी काम संभाला। फिर 14 जून, 1964 से 12 मई, 1967 तक रेल राज्य मंत्री भी रहे। उसके बाद 13 मार्च, 1967 को वह संसदीय कार्य मंत्री बने। करीब दो साल तक वह लोकसभा में विपक्ष के नेता रहे। उस समय कांग्रेस संगठन के साठ संसद थे।

आरा शहर की चौथी विभूति बलिराम भगत थे। वैसे उनका जन्म आरा या उसके आस पास नहीं हुआ था, लेकिन वे आरा से छह बार सांसद रहे। 1952 से लगातार 1971 तक वे कांग्रेस के उम्मीदवार के रूप में चुनाव जीतते रहे। 1976 में वह लोकसभा के अध्यक्ष भी बने। वह बिहार के पहले व्यक्ति थे जो लोकसभा अध्यक्ष बने। यह सम्मान बाबू जगजीवन राम को भी नहीं मिला। जगजीवन राम की पुत्री मीरा कुमार ज़रूर लोकसभा अध्यक्ष बनीं। इस तरह आरा शहर से जुड़े दो व्यक्ति इस पद पर पहुंचे। बलिराम भगत का जन्म वैसे तो 7 अक्तूबर, 1922 में पटना के मेंहदीगंज में हुआ था। वे बाबूजी से 14 साल और राम सुभग सिंह से 5 साल छोटे थे। उन्हें देश के चार प्रधानमंत्रियों के नेतृत्त्व में मंत्री के रूप में काम करने का मौका मिला। इतना ही नहीं वे हिमाचल प्रदेश और राजस्थान के गवर्नर भी रहे। उन्होंने पटना कॉलेज से बी.ए. और पटना विश्वविद्यालय से ही अर्थशास्त्र में एम.ए. किया था। वे पढ़ने में तेज़ थे और उन्हें गोल्ड मैडल भी मिला था। 1939 में 17 साल की उम्र में वे कांग्रेस के सदस्य बन गए थे और 1942 के आंदोलन में दो साल भूमिगत रहे। वे अखिल भारतीय छात्र कांग्रेस के संस्थापक सदस्य भी थे। इसके अलावा वे 1946–47 में बिहार प्रदेश छात्र कांग्रेस के महासचिव भी रहे।

वे 1950 में अंतरिम संसद में भी चुने गए। फिर 1952 के चुनाव में पटना सह–शाहाबाद सीट से लोकसभा के लिए चुने गए। बाद में इस सीट का नाम आरा संसदीय क्षेत्र पड़ा। वे लगातार पांच बार इस सीट से विजयी हुए, जो आरा चुनाव क्षेत्र से जीतने का एक रिकार्ड है। ज़ाहिर है वे लोकप्रिय थे और जनता से काफ़ी घुले–मिले थे। तब बिहार में कांग्रेस का दबदबा था।

श्री भगत पहले तो 1952 में वित्त मंत्री के संसदीय सचिव हुए। 1956 में वे उप वित्त मंत्री बने और तीन लोकसभा में सात साल इस पद पर रहे। 1963 में वे योजना राज्य मंत्री बने और 1966 तक इस पद पर रहे। 1969 में वे कैबिनेट स्तर के मंत्री बने और उन्हें विदेश, व्यापार एवं आपूर्ति मंत्रालय का कार्यभार दिया गया। फिर वे आठ महीने इस्पात एवं भारी इंजीनियरिंग मंत्री भी बने। श्री भगत कुशल वक्ता एवं अनुभवी संसद होने के कारण ही डॉ. जी. एस. ढिल्लो के इस्तीफे के बाद 5 जनवरी, 1976 को लोकसभा अध्यक्ष बनाए गए। वे 25 मार्च, 1977 तक लोकसभा अध्यक्ष रहे। उस समय देश

में आपातकाल का दौर था। वे 1980 में सातवीं लोकसभा में सीतामढ़ी से और 1984 में आरा से आठवीं लोकसभा के लिए चुने गए। 2 जनवरी, 2011 को उनका निधन हो गया। उनका अंतिम संस्कार बिहार में गंगा के किनारे राजकीय सम्मान के साथ किया गया।

fgnh Hk"k.k f'koiwtu lgk;

अगर आरा शहर को सर सच्चिदानंद सिन्हा और बाबू जगजीवन ने राजनीति में राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई तो साहित्य के क्षेत्र में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह और आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस शहर को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किया। इन दोनों लेखकों का जन्म तो इस शहर में नहीं हुआ लेकिन शिक्षा–दीक्षा और जीवन के आरंभिक वर्ष यहीं गुज़रे तथा इन दोनों ने अपनी पहली नौकरी इसी शहर में की और इन दोनों के साहित्यिक व्यक्तित्व की नींव भी यहीं पड़ी। दोनों हिंदी साहित्य के अप्रतिम शैलीकार के रूप में मशहूर हुए। इतना ही नहीं, दोनों बिहार में हिंदी नवजागरण के आधारस्तंभों में रहे। दोनों आजीवन एक–दूसरे के मित्र भी रहे और हिंदी के विकास में कंधा से कंधा मिलाकर चलते रहे।

शिव जी का जन्म 9 अगस्त, 1893 में बक्सर जिले के उनवास गांव में हुआ था। उनके पिता बागीश्वरी दयाल आरा के बक्शी जी की ज़मींदारी में पटवारी थे। शिवजी का बचपन अपनी बुआ और बहनोई के साथ बीता जहां उन्होंने मदरसे और मकतब में उर्दू–फारसी की पढ़ाई की। 1903 में उनका दाखिला आरा के कायस्थ जुबली एकेडमी में पांचवें दर्ज़े में करा दिया गया। 1906 में उनके पिता का देहांत हुआ और 1907 में उनकी शादी हुई तब उनकी उम्र महज़ 14 साल थी। आरा के जिला स्कूल के एक समारोह में उन्होंने सर सच्चिदानंद सिन्हा और मशहूर वकील हसन इमाम को पहली बार देखा था। इस स्कूल में ही हिंदी के प्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार ईश्वरी प्रसाद शर्मा के बड़े भाई टीचर थे। आरा में उन दिनों शिवनंदन सहाय जैसे लेखक थे जिन्होंने भारतेंदु जीवनी लिखी थी और वे हिंदी के प्रथम जीवनी लेखक थे। इसके अलावा सकल नारायण शर्मा और देवेंद्र कुमार जैन जैसे लेखक भी इस शहर में थे, 1902 में आरा नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हो चुकी थी। इस तरह शिव जी को आरा में एक साहित्यिक–बौद्धिक वातावरण मिला और उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में मदद मिली। सकल नारायण शर्मा ने ही शिव जी का पहला

लेख 'होली में सभ्यता का नाश' *लक्ष्मी* में छापा था। आरा में ही शिवपूजन और ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने रंगमंच पर साथ काम किया। यहीं से वे 1914 में हिंदी साहित्य सम्मेल्लन के पांचवें अधिवेशन में गए थे। आरा सेवा समिति नामक संस्था में भी वे सक्रिय थे।

इसी आरा शहर में वे टाउन हाल स्कूल में टीचर बने। असहयोग आंदोलन में उन्होंने 1920 में आरा टाउन हाल स्कूल की सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। अपने साहित्य प्रेमी छात्र हरद्वार प्रसाद जालान की *मारवाड़ी सुधार* पत्रिका के संपादक बनकर कोलकाता आ गए। यहीं से 26 अगस्त, 1926 को *मतवाला* निकला था जिसमें निराला और नवजादिक लाल श्रीवास्तव के साथ शिव जी भी थे।

शिव जी बाद में लखनऊ, वाराणसी, छपरा, लहेरियासराय और पटना में रहे लेकिन आरा शहर से उनका रिश्ता बना रहा। यही कारण है कि जब आरा नागरी प्रचारिणी सभा ने राजेंद्र बाबू पर एक अभिनंदन ग्रंथ भेंट करने का प्रस्ताव किया तो उसके संपादन का भार शिव जी को ही दिया गया और शिव जी ने हमेशा की तरह अपने अथक परिश्रम और त्याग से उस ग्रंथ का संपादन किया जो राजेंद्र बाबू को राष्ट्रपति बनने के एक महीने बाद ही आरा में भेंट किया गया।

इससे पहले शिव जी *मतवाला, माधुरी* और *जागरण* तथा *हिमालय* के संपादक के रूप में विख्यात हो चुके थे। वे अपने एकमात्र उपन्यास देहाती दुनिया से हिंदी में आंचलिक लेखन का सूत्रपात कर चुके थे तथा अपनी कहानी, कहानी के प्लॉट के लिए एक कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। वे मात्र मैट्रिक पास होने पर भी छपरा कॉलेज में हिंदी के शिक्षक नियुक्त किए गए थे। शिवजी 1932 में *महावीर प्रसाद द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ* का संपादन भी कर चुके थे।

शिव जी को आज़ादी के बाद बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् के निदेशक के रूप में नियुक्त किया गया और उन्होंने 60 ऐसे ग्रंथों को प्रकाशित किया जो हिंदी के गौरव ग्रंथ साबित हुए। उनका निजी संबंध राजेंद्र बाबू, जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्र देव एवं पुरुषोत्तम दास टंडन से था। इसके अलावा प्रेमचंद, निराला और प्रसाद से भी उनका आत्मीय संबंध रहा और इन लोगों की रचनाओं का संपादन करने का सुयोग उन्हें प्राप्त हुआ। शिवजी अत्यंत विनम्र, सज्जन, ईमानदार एवं तपस्वी लेखक के रूप में जाने गए। जिन्होंने हमेशा नए

लेखकों को प्रोत्साहित किया। वे जीवन भर परदे के पीछे रहकर काम करते रहे। स्वभाव से वे संकोची थे। आर्थिक अभाव में रहकर जीते रहे पर किसी के आगे हाथ नहीं पसारा। शिवजी को 1960 में काज़ी नज़रुल इस्लाम के साथ पद्मभूषण दिया गया। 1962 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण, दिनकर तथा राहुल जी के साथ उन्हें भागलपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट् की मानद उपाधि दी गई। भारत सरकार ने 1998 में उनकी 105वीं जयंती पर उनके सम्मान में एक डाक टिकट जारी किया।

jktk jkf/kdkje.k çlkn flag

हिंदी साहित्य में बिहार ने तीन शैलीकारों को जन्म दिया, उनमें शिवपूजन बाबू और बेनीपुरी तो शामिल थे ही, राजा जी भी उनमें से एक थे। अलबत्ता वह इन दोनों से पहले लेखन में आए। वे उम्र में शिव जी से तीन साल बड़े थे। उनका जन्म सितंबर, 1890 में हुआ था। उनके पितामह सूर्यपुरा के राजा थे। राजाजी भी आरा में जन्मे नहीं थे, पर शिवजी की तरह वे भी इस शहर से जुड़े रहे और यहीं उनकी स्कूली शिक्षा भी हुई थी। आज़ादी की लड़ाई में गांधीजी से प्रेरित होकर उन्होंने यहीं से अपनी भागीदारी की। राजा जी के पिता राजा राजेश्वरी प्रसाद सिंह भारतेंदु के मित्र थे और ब्रजभाषा के कवि थे। उनका निधन 1903 में ही हो गया था। उनके पिता डुमरांव महाराज के मैनेजर एवं कवि थे, कहा जाता है कि उनकी मित्रता रवींद्र नाथ टैगोर से भी थी। कोलकाता में भी उनका घर था। राजाजी की कॉलेज की पढ़ाई कोलकत्ता में हुई थी, वे टैगोर से भी मिले थे। राजाजी की स्कूली शिक्षा आरा ज़िला स्कूल से हुई थी। आरा में उनकी एक कोठी भी थी। रामचंद्र शुक्ल ने बिहार के अयोध्या प्रसाद खत्री के अलावा राजा राधिका रमण प्रसाद की भी चर्चा और उनकी भाषा की तारीफ़ की है। राजाजी को ख्याति अपनी दो कहानियों – *कानों में कंगना* और *दरिद्रनारायण* से मिली थी। 'कानों में कंगना' जयशंकर प्रसाद की पत्रिका *इंदु* में 1913 में छपी थी लेकिन इससे पहले 1911 में आगरा के कॉलेज की पत्रिका में छप चुकी थी। कानों में कंगना हिंदी की आरंभिक कहानियों में से एक राजाजी ने अपना लेखन 1910 में *नए रिफॉर्मर* नामक प्रहसन से शुरू किया था, उनका पहला कहानी संग्रहालय *कुसुमावली* 1912 में नागरी प्रचारिणी सभा, आरा से छपा था, जिसमें उनकी छह कहानियां थीं, इनमें कानों में कंगना भी थी।

राजा जी आरा शहर म्युनिसिपैलिटी के पहले भारतीय मेयर भी थे। जब गांधी जी आरा आये तो राजा जी ने उनके स्वागत की खूब तैयारियां की जिस से अंग्रेज़ नाराज़ हो गए। इस पर राजा जी ने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। राजा जी ने *राजेंद्र प्रसाद अभिनंदन ग्रंथ* में सहयोग किया था। जब राजेंद्र बाबू को यह ग्रंथ भेंट किया गया तो उस समारोह के अध्यक्ष राजा जी ही थे।

राजा जी ने केवल कहानियां ही नहीं लिखी बल्कि कई उपन्यास भी लिखे। प्रेमचंद के बाद वे उस दौर के दूसरे महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। *राम रहीम, चुंबन और चांटा, पुरुष और नारी* उनके प्रमुख उपन्यास हैं। उन्होंने कुल 12 उपन्यास लिखे। गांधी टोपी भी उनका चर्चित कहानी संग्रह है। राजाजी को भारत सरकार ने दिनकर और शिवपूजन सहाय की तरह पद्मभूषण अलंकरण से नवाज़ा। उन्होंने हिंदी की चर्चित पत्रिका *नई धारा* निकाली जिनसे शिवपूजन सहाय और बेनीपुरी जी जुड़े थे। उन्होंने पटना में अशोक प्रेस की भी स्थापना की थी। उनका निधन 24 मार्च 1971 को हुआ।

आरा : दर्शनीय स्थल

हर शहर में कुछ न कुछ दर्शनीय स्थल होते हैं जो उसके इतिहास, प्राचीन परंपराओं, वास्तुशिल्प और धार्मिक आस्थाओं को भी प्रतिबिंबित करते हैं। इनमें किला, महल, स्मारकों के अलावा मंदिर, चर्च, गिरिजाधर, मस्जिद जैसे धार्मिक स्थल, पार्क प्रतिमाएं, लाइब्रेरी, स्कूल–कॉलेज एवं अन्य प्रतिष्ठान तथा संस्थान भी शामिल हैं। आरा के दर्शनीय स्थल पर्यटकों के लिए कौतूहल और जिज्ञासा के केंद्र रहे हैं। इनमें आरा हाउस, होली जेवियर चर्च, श्री 1008 चंद्रप्रभु दिगंबर जैन मंदिर, जैन सिद्धांत पांडुलिपि संग्रहालय, बखोरापुर का काली मंदिर, आरण्य देवी मंदिर, महथिन माई मंदिर और शाही मस्ज़िद भी शामिल है। इन पर्यटन स्थलों के बारे में अभी तक कोई स्वतंत्र पुस्तक प्रकाशित नहीं है। लेकिन कुछ लोगों ने समय–समय पर समाचार–पत्रों में इन स्थलों के बारे में ज़रूर लिखा है। शहर के वरिष्ठ पत्रकार एवं संस्कृतिकर्मी शमशाद प्रेम ने समय–समय स्थानीय अखबारों में इन पर्यटन स्थलों के रख–रखाव एवं सरकार की उदासीनता को लेकर प्रशासन का ध्यान खींचा है। प्रशासन ने जब तब इस दिशा में कदम भी उठाए हैं लेकिन

आरा के दर्शनीय स्थाल

अभी भी इन स्थलों के पास साफ–सफ़ाई निगरानी, रख–रखाव तथा संरक्षण उचित तरीके से नहीं होता है और पर्यटन की दृष्टि से इन्हें अभी आकर्षक नहीं बनाया जा सका है। इधर संस्कृति मंत्रालय, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने अब विशेष ध्यान देना शुरू किया है लेकिन पर्याप्त बजट न होने तथा नागरिक समाज में इसको लेकर जागरूकता न होने से पर्याप्त संरक्षण नहीं मिल पाता है।

आरा हाउस को ही ले लीजिए। यह शहर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है। महाराजा कॉलेज परिसर में स्थित आरा हाउस में ही 1857 की लड़ाई लड़ी गई थी और बाबू कुंवर सिंह ने अंग्रेज़ सैनिकों को यहां कैद कर सर्वप्रथम स्वतंत्रता संग्राम का ध्वज फहराया था। यह स्थल धीरे–धीरे ज़िले में स्वतंत्रता की चेतना का प्रतीक बन गया पर अभी तक यह उपेक्षित ही पड़ा है। कहा जाता है कि आरा हाउस से वीर कुंवर सिंह के जगदीशपुर किले तक एक लंबी सुरंग भी थी लेकिन इस संबंध में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला है। कुछ दिन पहले एक टीवी चैनल ने भी इस सुरंग के बारे में भी एक रिपोर्ट प्रसारित की थी। रीगल होटल के एक कर्मचारी ने इन पंक्तियों के लेखक के सामने दावा किया कि उसने अपने बचपन में आरा हाउस की सुरंग को देखा था, बाद में आरा हाउस में प्रवेश पर रोक लगा दी गई। शमशाद प्रेम के अनुसार 2003 में आरा हाउस के रख–रखाव के लिए करीब 23 लाख 44 हजार 500 रुपए स्वीकृत किए गए थे।

आरा हाउस के बाद दूसरा ऐतिहासिक स्थल होली जेवियर चर्च है जहां जॉर्ज पंचम ने अपनी कोलकाता से दिल्ली की यात्रा के दौरान रुक कर प्रार्थना की थी। जब 1911 में देश की राजधानी कोलकाता से स्थानांतरित होकर दिल्ली लाई गई तो ब्रिटेन के सम्राट जॉर्ज पंचम भारत आए थे। उनका भारत आना एक ऐतिहासिक घटना थी और उनके स्वागत में दिल्ली दरबार का भी आयोजन किया गया था। कोलकाता से दिल्ली आने के रास्ते में वह एक दिन रविवार को आरा में रुकने वाले थे। इसलिए उनके प्रेयर के लिए ही इस चर्च का निर्माण कराया गया था। आज भी इस चर्च में प्रार्थनाएं होती है। शहर में कैथोलिक मिशन होने के कारण कुछ ईसाई आबादी भी यहां थी पर अब मुश्किल से सौ ईसाई बचे होंगे। जॉर्ज पंचम के बाद इस चर्च में ब्रिटिश फौज के लोग करते थे। दैनिक जागरण, आरा संस्करण में शमशाद प्रेम की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार इस चर्च में आज़ादी से पूर्व एक लाइब्रेरी भी थी। आज़ादी के बाद यह चर्च, चर्च ऑफ नॉर्थ इंडिया, भागलपुर के अधीन आ गया। बाद में उसे मैथोडिस्ट चर्च को

सौंप दिया गया। चर्च में पादरी के बैठने के लिए एक बहुत ही सुंदर कुर्सी थी जो चोरी हो गई। चर्च के प्रोजेक्ट मैनेजर एन.के. मंडल के अनुसार चर्च में कई संस्थाएं भी संचालित होती थीं और स्कूल, टाइपिंग इंस्टीट्यूट तथा कंप्यूटर सेंटर भी चलते रहे हैं, लेकिन आज इस चर्च की स्थिति बहुत खस्ता है। चर्च के पास बड़ा सा मैदान है, लेकिन इस मैदान में साफ़–सफ़ाई नहीं है।

आरा हाउस तथा चर्च की तरह ही शहर का प्रमुख आकर्षण केंद्र श्री 1008 चंद्रप्रभु दिगंबर जैन मंदिर है। यह मंदिर जेल रोड पर स्थित है। दरअसल आरा शहर को जैनियों ने ही बसाया था। इसलिए पूरे जिले में जैनियों के करीब 44 मंदिर हैं। शहर में जैन समुदाय ने धर्मशाला स्कूल तथा कॉलेज खोलकर इस शहर का विकास किया है। इस क्रम में जैन समुदाय ने शहर में कई जैन मंदिर भी बनाए। कहा जाता है कि जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर 1008 पार्श्वनाथ स्वामी जी और 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर भी आरा की धरती पर पधार चुके हैं।

श्री दिगंबर जैन पार्श्वनाथ पंचायती मंदिर से जुड़े इस मंदिर की स्थापना विक्रम संवत 1896 में प्रद्युम्न दास ने कराई थी। मंदिर में चंद्रप्रभु जी की प्रतिमा वेदी पर लगी है। मंदिर परिसर में ज्वाला मालिनी माता की भी प्रतिमा है। उसके अलावा आचार्य महावीर क्रांति जी, आचार्य विमल सागर की भी प्रतिमा है। इस मंदिर में देश भर के जैन मुनि तथा संत भी आते रहते हैं।

शहर से करीब 8 किलोमीटर दूर मसाढ़ गांव में जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर 1008 पार्श्वनाथ स्वामी का अति प्राचीन मंदिर है। इसमें पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा है। कहा जाता है कि पार्श्वनाथ स्वामी बनारस से सम्मेद शिखर के लिए प्रस्थान किए थे तो मसाढ़ गांव में ही रुके थे।

इसी तरह और भी कई जैन मंदिर इस शहर में हैं। शहर के जेल रोड पर ही विक्रम संवत 1555 में तीर्थंकर शांतिनाथ भगवान का भी विशाल मंदिर है। इस तरह और भी कई जैन मंदिर इस शहर में है। शहर के जैन समुदाय ने मंदिरों के निर्माण के अलावा एक महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक पुस्तकालय की स्थापना की थी। वैसे तो राज्य की प्रमुख लाइब्रेरी खुदाबख्श खां लाइब्रेरी और सच्चिदानंद सिन्हा लाइब्रेरी मानी जाती हैं। लेकिन राज्य का तीसरा महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय आरा का सेंट्रल जैन ओरियंटल लाइब्रेरी ही है जो जैन सिद्धांत भवन के नाम से जाना जाता है। यह राज्य की सर्वाधिक महत्त्व की ऐतिहासिक लाइब्रेरी है क्योंकि यहां कई दुर्लभ ग्रंथ ताड़पत्रों पर सुरक्षित हैं। इस लाइब्रेरी की स्थापना 1903 में देव कुमार जैन साहब ने की

थी। उन्होंने देव कुमार जैन ट्रस्ट की स्थापना की और उस ज़माने के राजा–महाराजाओं से पत्र व्यवहार कर चंदा भी एकत्रित किया था। इस पुस्तकालय में 2500 ताड़पत्र तथा 6500 दुर्लभ पांडुलिपियां हैं। ये ग्रंथ तथा ताड़पत्र जैन धर्म ज्योतिष आयुर्वेद और व्याकरण आदि से संबंधित हैं और वे कन्नड़, संस्कृत तथा पालि भाषा में हैं। जर्मन विद्वान सी. बुलचिंद ने इसके 18 ताड़पत्रों का अध्ययन कर राम कथा नामक एक पुस्तक भी लिखी थी। लंदन स्थित ऋषभ जैन लाइब्रेरी इस पुस्तकालय से *शोध* के लिए पुस्तकें भी मंगवाती थी। 1911 में इस पुस्तकालय से *जैन सिद्धांत भास्कर* नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी शुरू हुई थी। 1934 में यह अर्द्धवार्षिक हो गई।

वरिष्ठ पत्रकार शमशाद प्रेम का कहना है कि आर्थिक कारणों से *जैन सिद्धांत भास्कर* का प्रकाशन 1994 से बंद हो गया। पांडुलिपियों पर दीमक लग गए हैं। पुस्तकालय में नवाब वाजिद अली शाह के दरबारी चित्रकार अब्दुल गनी और मूकबधिर चित्रकार सुबोध कुमार जैन की कई कलाकृतियां लगी हुई हैं। इसके अलावा देव कुमार जैन के महाराजाओं से हुए पत्र व्यवहार भी दीवारों पर फ्रेम कराकर टांगे गए हैं जिन्हें देखकर इस पुस्तकालय की स्थापना का इतिहास पता चलता है।

इस पुस्तकालय में दुनिया भर के शोधार्थी आते हैं। पुस्तकालय में अपभ्रंश, प्राकृत, तमिल, मराठी, फ्रेंच तथा जर्मन एवं इटालियन भाषा के भी ग्रंथ हैं। 2005 में वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय से इस पुस्तकालय को शोध संस्थान के रूप में मान्यता मिली थी लेकिन उसे कोई अनुदान नहीं मिला। इस पुस्तकालय को डिजिटल बनाना बहुत आवश्यक है, अन्यथा एक दिन यह दुर्लभ पांडुलिपियां नष्ट हो जाएँगी।

शमशाद प्रेस का कहना है कि राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन द्वारा 2004 में कराए गए सर्वेक्षण तथा 2005 में पांडुलिपियों के सूचीकरण से पता चलता है कि पूरे जिले में 1286 मंदिरों, घरों, मठों एवं पुस्तकालयों में 29401 पांडुलिपियां हैं। 15वीं–16वीं सदी की 8388 पांडुलिपियां तो केवल जैन ओरियंटल लाइब्रेरी में ही हैं।

परदा गर्ल्स हाई स्कूल

क्या आपने किसी शहर में लड़कियों के स्कूल का नाम परदा गर्ल्स हाई स्कूल सुना है? शायद नहीं सुना होगा, लेकिन आरा शहर में एक ऐसा स्कूल है जिसका नाम परदा गर्ल्स हाई स्कूल है। इसकी कहानी भी बड़ी दिलचस्प है और यह स्कूल शहर में मर्दवादी ढांचे को चुनौती देने के साथ महिला सशक्तीकरण की कहानी बताता है। सत्तर वर्षीय माधुरी श्रीवास्तव बताती हैं कि शहर में लड़कियों के पहले स्कूल की स्थापना का इतिहास तो मुझे नहीं पता लेकिन जब मेरी शादी हुई थी तो मेरे शहर में एक परदा गर्ल्स हाई स्कूल हुआ करता था जिसमें मैं पढ़ती थी। 1956 की बात होगी। मेरे पिता जी डाकघर विभाग में उच्च अधिकारी थे। वह लड़कियों को पढ़ाना तो चाहते थे पर उन दिनों शहर में महिलाएं पुरुषों से घुलती–मिलती नहीं थीं और परदा करती थीं। शायद यही कारण है कि मेरे पिता जी ने उस स्कूल में नाम लिखवाया था। हम लोगों के घर पर ही फिटिन –बग्घी– आती थी जिसमें चारों तरफ़ परदे लगे होते थे। हम लड़कियां उसी फिटिन में बैठकर स्कूल जाती थीं। तब शहर की कोई भी लड़की रिक्शे पर बैठकर नहीं जाती थी और न ही आज की तरह साइकिल चलाती थी। तब परदा सिस्टम हमारे घरों में भी था। यह पूछे जाने पर कि क्या आपको उस स्कूल की कोई स्मृति याद है, श्रीमती श्रीवास्तव ने बताया कि अब कुछ याद नहीं है पर इतना मालूम है कि शहर में उस ज़माने में बहुत कम लड़कियां पढ़ती थीं और उनके लिए स्कूल भी गिने–चुने थे और लड़कियों का कोई कॉलेज भी नहीं था। माता–पिता लड़कियों की शादी भी बहुत जल्द कर देते थे। परदा गर्ल्स स्कूल की स्थापना और उसके इतिहास के बारे में इतना ही पता चल पाया कि यह स्कूल 1928 में खुला था लेकिन इससे पहले शहर में 1907 में ही देव कुमार जैन ने जैन कन्या पाठशाला भी खोला था। 1921 में जैन बाला विश्राम नामक एक शिक्षण संस्थान भी स्थापित किया गया था। बाद में शहर में परदा स्कूल खुला जिसका पूरा नाम राजकीय कन्या मध्य विद्यालय था और यह शहर के *सिंडीकेट* इलाके में खुला था। इसमें कक्षा एक से आठ तक की पढ़ाई होती थी। इसमें सामान्य विषय के साथ–साथ संस्कृत एवं उर्दू की भी पढ़ाई होती थी। शहर के एक गौड़ परिवार ने यह स्कूल खोला था। आज स्वयं सहायता समूह द्वारा संचालित मीना मंच के माध्यम से स्कूल में लड़कियों को पढ़ाई–लिखाई के अलावा

सांस्कृतिक गतिविधियां, वाद–विवाद प्रतियोगिताएँ एवं भाषण आदि आयोजित किए जाते हैं। स्कूल की वर्तमान प्राचार्य किरण कुमारी ने बताया कि अब पहले की तरह इस स्कूल में परदा सिस्टम नहीं है। पहले तो हर कक्षा में एक परदा लगा होता था। अब लड़कियां भी परदे में स्कूल नहीं आती हैं। पहले इस स्कूल का उद्देश्य था कि परदे में रहकर भी लड़कियों को शिक्षित किया जाए लेकिन अब ज़माना बदल गया है। डीएवी स्कूल की अवकाश–प्राप्त प्राचार्या एवं कवयित्री मीरा श्रीवास्तव का कहना है कि शहर में लड़कियों और स्त्रियों में काफ़ी जागरूकता आई है और उनका सशक्तीकरण हुआ है। शहर की लड़कियां, टीचर, डॉक्टर इंजीनियर बनने के अलावा हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। अब तो लड़कियां खुद साइकिल और स्कूटी चलाकर स्कूल तथा कॉलेज जा रही हैं।

दरअसल इस शहर में नारी सशक्तीकरण में सबसे बड़ा ऐतिहासिक योगदान चंदाबाई का है। आचार्य शिवपूजन सहाय द्वारा संपादित *बिहार की महिलाएं* ग्रंथ में और जो राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू को राजेंद्र अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया था उसमें चंदाबाई का विशेष उल्लेख भी है। चंदाबाई का जन्म तो वृंदावन में हुआ था लेकिन 12वर्ष की आयु में उनका विवाह आरा के जैन परिवार में धर्म कुमार जी के साथ हुआ था लेकिन उनकी मृत्यु विवाह के कुछ साल बाद ही हो गई और चंदाबाई विधवा हो गईं। उनके जेठ देव कुमार जी ने उनकी उच्च शिक्षा की व्यवस्था की। चंदाबाई ने काशी के राजकीय संस्कृत विद्यालय से पंडिता की शिक्षा प्राप्त की जो शास्त्री की परीक्षा के समकक्ष थी। उन्होंने 1918 में भारतीय दिगंबर जैन महिला परिषद की भी स्थापना की और गांधी जी से प्रेरणा पाकर 1920 में चरखा चलाना भी शुरू किया। कानुपर में जब दिगंबर जैन महिला परिषद का वार्षिक अधिवेशन हुआ तो उन्होंने उसे संबोधित भी किया था।

चंदाबाई जैन कन्या पाठशाला और जैन बाला विश्राम का भी संचालन करती रहीं। इन संस्थाओं में आरा और बिहार की ही नहीं, बल्कि देश के कोने–कोने से छात्राएं यहां आकर शिक्षा प्राप्त करती थीं। महात्मा गांधी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे और काका कालेलकर ने भी इस संस्था के महत्त्व को रेखांकित किया है।

वैसे स्त्री शिक्षा पर अंग्रेज़ सरकार ने 1914 में पहली बार एक कमेटी गठित की थी। इस कमेटी की सिफ़ारिश पर ही प्रत्येक जिले में लड़कियों के लिए कम से कम एक हाई स्कूल खोलने का प्रस्ताव हुआ। 1911 तक बिहार में स्त्री शिक्षा मात्र 0.4 प्रतिशत थी। इससे अनुमान लगाया जा

सकता है कि स्त्री शिक्षा की कितनी बुरी हालत थी। लेकिन चंदाबाई और देव कुमार जैन ने स्त्री शिक्षा को लेकर न केवल ऐतिहासिक काम किया, बल्कि महिला सशक्तीकरण की नींव भी रखी। आरा शहर से उस ज़माने में कई लेखिकाएं उभरीं जो कालांतर में विस्मृत कर दी गईं। इसी शहर में श्रीमती विमला देवी रमा नामक कवयित्री का जन्म 1902 में हुआ जो महादेवा मोहल्ले की थीं। उन्होंने *शिक्षा सौरभ* नामक पुस्तक के अलावा *विमल पुष्पांजलि* नामक पुस्तक भी लिखी थी। *शिक्षा सौरभ* तो बिहार के पाठ्यक्रम में भी स्वीकृत थी। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद के अवकाश प्राप्त अधिकारी बजरंग वर्मा ने भी लिखा है कि चंदाबाई की अनेक पुस्तकें आरा के प्रेम मंदिर प्रकाशन से छपी थीं जो देव कुमार जैन का प्रकाशन था। चंदाबाई ने *ऐतिहासिक स्त्रियां, आदर्श कहानियां* जैसी पुस्तकें भी लिखी थीं। बजरंग वर्मा ने यह भी लिखा है कि आरा शहर में 1884 में ही चंद्रावती नामक एक लेखिका का जन्म हुआ जिनका विवाह समस्तीपुर के गिरीश्वर जी से हुआ था। चंद्रावती देवी ने भी एक काव्य संग्रह *उद्गार* तथा पद्य नाटक *शिव–शिवा* लिखा जो छप नहीं पाया। वह 1942 में ही दिवंगत हो गईं थीं।

दरअसल आधुनिक काल में बिहार में महिलाओं के जागरण का इतिहास 1917–18 से शुरू होता है जब गांधी जी ने बिहार आकर चंपारण आंदोलन शुरू किया। 1924 के आसपास बिहार में पहली महिला ग्रेजुएट पटना की शोभना भट्टाचार्य थीं। महात्मा गांधी तथा जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावती के आरा आने से भी शहर की महिलाओं पर उसका प्रभाव पड़ा और बाद में शहर की महिलाओं में शिक्षा को लेकर एक चेतना फैली।

राजेंद्र बाबू की बड़ी बहन भगवती देवी, रामदुलारी सिन्हा, किशोरी सिन्हा, तारकेश्वरी सिन्हा जैसी महिलाओं के राजनीति में और सामाजिक आंदोलन में भाग लेने से भी आरा शहर में स्त्रियों के बीच एक चेतना जागी और बाद में तो बाबू जगजीवन राम की समधिन सुमित्रा देवी आरा की कई बार विधायक भी रहीं। आरा शहर के महिला सशक्तीकरण का ही नतीजा है कि राष्ट्रीय जनता दल की कांति सिंह और जनता दल यू की मीना सिंह इस शहर से सांसद बनीं और उन्होंने अन्य महिलाओं को भी प्रेरित किया। इतना ही नहीं, शहर में उर्मिला कौल जैसी लेखिकाओं ने भी अपनी पहचान बनाई तथा कई महिला गैर सरकारी संगठनों का नेतृत्व कर शहर में महिला सशक्तीकरण को मज़बूत बनाया। यही कारण है कि आज लड़कियों के लिए कई स्कूल और कॉलेज शहर में चल रहे हैं और महिला वकील और डॉक्टर भी काफ़ी संख्या में हैं।

आरा : वर्तमान और भविष्य

शहरों में बढ़ती आबादी और विस्तार के कारण देश के लगभग हर शहर का चेहरा और भूगोल बदलता जा रहा है। चाहे दिल्ली का चांदनी चौक हो या फिर पटना का सिटी इलाका हो, यही कहानी कमोबेश आरा शहर की भी है। प्रशासन भले ही अपने स्तर पर शहर का नाक नक्श और चेहरा ठीक करने में लगा हुआ है लेकिन अभी तक इस शहर में साफ़–सफ़ाई और योजनाबद्ध तरीके से विकास की झलक नहीं दिखाई देती है। वैसे देश के किसी शहर में योजना का क्रियान्वयन बेहतर ढंग से होता है तो किसी शहर में धीमी गति से क्रियान्वयन होता है। कई बार तो एक ही शहर के कुछ इलाकों का चेहरा साफ़ सुथरा होता है तो कुछ हिस्सों में विकास कार्य दिखाई तक नहीं देता। दिल्ली, मुंबई और कोलकाता जैसे बड़े महानगरों में भी यह अंतर साफ़ नज़र आता है। आज़ादी के बाद देश की राजधानियों और महानगरों में तो विकास कार्य और साफ़–सफ़ाई नज़र आता है लेकिन ज़्यादातर छोटे शहरों और कस्बों की स्थिति बेहद खराब है।

यूं तो आरा शहर में आज़ादी के बाद स्कूल कॉलेजों एवं मुहल्लों के निर्माण तथा पुलों आदि के बनने से विकास की थोड़ी बहुत झलक तो दिखाई देती है लेकिन उसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। आरा शहर में नागरिक सुविधाओं को बेहतर बनाने तथा आधारभूत ढांचे को चुस्त–दुरुस्त रखने के लिए राज्य के शहरी विकास एवं आवास विभाग ने 2010 से 2030 तक यानी 20 वर्षों के लिए एक योजना बनाई है। इस योजना के बारे में अर्नेस्ट एंड यंग कंपनी की ओर से योजना की रूपरेखा का एक दस्तावेज भी तैयार किया गया है। दरअसल बिहार सरकार ने राज्य के 28 शहरों के नगर विकास की योजना तैयार की है। जब प्रेम कुमार पिछली नितीश सरकार में मंत्री थे तभी यह योजना तैयार की गई थी। यह योजना ब्रिटिश सरकार के अंतरराष्ट्रीय विकास विभाग द्वारा वित्त पोषित संवर्धन योजना के तहत बनाई गई है। इसके अंतर्गत शहर में सीवर सिस्टम और जलापूर्ति प्रणाली तथा विद्युत आपूर्ति आदि को ठीक करने का प्रस्ताव है।

शहर की आबादी 2001 में दो करोड़ तीन लाख 380 थी जो पूरे जिले की आबादी का 9.07 प्रतिशत है लेकिन 2035 तक इसकी आबादी पांच करोड़ हो जाएगी। इस जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए अभी से ही शहर के विकास की यह योजना बनाई गई है। अभी शहर में आठ पानी की टंकियां हैं और उनमें से मात्र 8410 घरों में ही पानी पहुंच पाता है। शहर में 922 हैंडपंप हैं, इसलिए शहर में भूमिगत जल ही पानी प्राप्त करने का मुख्य साधन है। लेकिन जिस तरह भूमिगत जल का स्तर दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है, उससे जल संकट और गहरा होने का अनुमान है। इसलिए नई परियोजना में 275 करोड़ रुपए जलापूर्ति पर खर्च किये जाने का प्रस्ताव है। शहर में सीवर प्रणाली भी ठीक नहीं है। बरसात के दिनों में यह समस्या गंभीर हो जाती है और सीवर का पानी सड़कों पर बहने लगता है। शहर में मुख्य 9 ड्रेनेज आउटलेट हैं और 66 प्रतिशत लोग खुले में शौच करते हैं। स्वच्छता मिशन के आरंभ होने से उम्मीद है कि आने वाले वर्षों में खुले में शौच न करने की व्यवस्था और सीवर व्यवस्था को ठीक करने के लिए 197 करोड़ खर्च करने का प्रस्ताव है।

शहर में पानी के निकास की केवल 20 किलोमीटर तक ही व्यवस्था है जो बहुत कम है। शहर में 9 नाले हैं पर उनमें काफ़ी गाद भरी रहती है जिससे बरसात में अक्सर शहर में पानी जम जाता है। इस समस्या को दूर करने के लिए 723 करोड़ रुपए खर्च करने का प्रस्ताव है।

शहर में हर रोज़ प्रति व्यक्ति औसतन 400 ग्राम ठोस कचरा पैदा होता है यानी पूरे शहर में हर दिन 102 टन कचरा बनता है लेकिन घर–घर कचरा उठाने की कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए शहर की अधिकांश गलियां गंदी रहती हैं। इसके लिए 64.16 करोड़ रुपये खर्च किए जाने का प्रस्ताव है। इसी तरह शहर में ट्रैफिक जाम और नगर परिवहन की भी समस्या है। पहले की तुलना में शहर में अधिक मोटरसाइकिल, स्कूटी और कार होने के कारण यह समस्या और गंभीर हो गई है क्योंकि कुछेक सड़कों को छोड़कर ज्यादा सड़कें हैं और गलियां बेहद संकरी रिक्शा और टैंपो ही परिवहन का मुख्य साधन है और इनकी संख्या में बेतहाशी वृद्धि हुई है। इसलिए कई बार दिन में ही कई इलाकों में ट्रैफिक जाम होता है। शहर में वाहनों की पार्किंग की भी समुचित व्यवस्था नहीं है। इन सभी समस्याओं को सुलझाने के लिए 196 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रस्ताव है। इसके तहत फ्लाईओवर, बस अड्डा, स्टेशन क्षेत्र, टैंपो स्टैंड, पार्किंग, फुटपाथ और सड़क–निर्माण पर ध्यान दिया

जाएगा। 2001 की जनगणना के अनुसार शहर में 3160 बिजली के खंभे हैं, लेकिन इन खंभों पर बिजली की व्यवस्था ठीक नहीं है। इन सारी बुनियादी सुविधाओं को चुस्त–दुरुस्त बनाने के लिए 2030 तक 761 करोड़ रुपये खर्च करने की योजना है। इसके अंतर्गत पांच पार्क बनाने, सात पर्यटन स्थलों को विकसित करने, 150 बेड का अस्पताल बनाने आदि का भी प्रस्ताव है। देखना है कि 2030 तक आरा शहर का चेहरा कितना बदल पाता है, लेकिन यह उम्मीद ज़रूर बनती है कि शहर की स्थिति पहले से बेहतर होगी।

ifjf'k"V

lnHk xFk

1 *शिवपूजन समग्र*; संपादक : डॉ मंगलमूर्ति

2 *मेरा जीवन* : शिवपूजन सहाय

3 *परिषद्* पत्रिका–स्वर्णजयंती अंक

4 *आधुनिक भारत के निर्माता जगजीवन राम* –लेखक ओम प्रकाश मौर्य

5 *बिहार गजेटियर*

6 *आरा पुरातत्त्व* : सकल नारायण शर्मा

7 *शोध पत्रिका* – आरा नागरी प्रचारिणी सभा

8 *सर सच्चिदानंद सिन्हा , आधुनिक भारत के निर्माता* – बिशेश्वर प्रसाद सिन्हा–प्रकाशन विभाग

9 *मेरे समकालीन बिहारी* : सर सच्चिदानंद सिन्हा

10 आरा जिला प्रशासन द्वारा प्रकाशित स्मारिका

11 चित्रगुप्त समाज स्मारिका

12 लोकसभा वेबसाइट

13 विकिपीडिया

14 आरा के बारे में *नया ज्ञानोदय* में प्रकाशित कथाकार अनंत कुमार सिंह के लेख

15 आरा के बारे में पत्रकार शमशाद प्रेम की रिपोर्ट्स

16 आरा के बारे में आरिफ माहरारवी की पुस्तक

17 आरा रंगमंच पर रंगकर्मी राजेश कुमार का लेख

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र

(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

एक परिचय

भारत की बहुरूपी, समृद्ध, जीवंत सांस्कृतिक परम्पराओं एवं औपचारिक शिक्षा पद्धतियों के बीच अंतर दूर करने हेतु मई, 1979 में सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र (सीसीआरटी) की स्थापना की गई। इसका मुख्य ध्येय तथा उद्देश्य समस्त सांस्कृतिक स्रोतों को साथ रखते हुए शिक्षा पद्धति में औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा के सभी स्तरों को अंतर्भूत करना है। उदाहरण के तौर पर पारंपरिक कलाओं : चाक पर मिट्टी का कार्य, बाँधनी कागज़ के खिलौने समेत हस्तकलाओं का प्रशिक्षण, सांचे बनाना, पुतली कला की विभिन्न विधाएँ और नृत्य एवं संगीत के बहुरंगी रूप को न केवल इतिहास तथा सामाजिक विज्ञान वरन् गणित, रसायन एवं भौतिकी विज्ञान जैसे विषयों के संग शैक्षिक माध्यम के रूप में उपयोग में लाना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कई नवीन योजनाएँ विकसित की गईं। कार्यक्रम के स्तर पर शिक्षा प्रशासकों एवं शिक्षक प्रशिक्षकों हेतु नियमित कार्यशालाओं; शिक्षकों हेतु अनुस्थापन एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम तथा विद्यार्थियों हेतु कार्यशालाओं एवं शिविरों का आयोजन किया जाता है। सांस्कृतिक प्रतिभा तथा विद्वत्ता की पहचान के लिए भारत सरकार की योजनाओं हेतु सीसीआरटी एक मुख्य संस्थान के रूप में कार्य कर रहा है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सीसीआरटी, सांस्कृतिक सामग्री का संग्रहण व प्रलेखन करता एवं श्रव्य-दृश्य किट तैयार करता है, जो विभिन्न विन्यासों में क्षेत्रीय संस्कृति अथवा विशिष्ट कला रूप के अध्ययन को प्रोत्साहित करता है और जिन लोगों ने इन कला रूपों की रचना की है, उनके विषय में जानकारी देता है।

एक संस्था के रूप में सीसीआरटी ने एनसीईआरटी और राज्यों के स्तर पर एससीईआरटी के साथ एक विस्तृत नेटवर्क (कार्यतंत्र) स्थापित किया है। आज इसके तीन क्षेत्रीय केन्द्र उदयपुर, हैदराबाद तथा गुवाहाटी में हैं। सीसीआरटी ने भारत के शिक्षक एवं विद्यार्थी समुदाय में राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक पहचान के आदर्शों को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समृद्ध तथा विविधतापूर्ण प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की इस धरा पर यह आवश्यक है कि भारत में आज का युवा अपनी तथा दूसरों की समृद्ध संस्कृति के प्रति एक गूढ़ समझ तथा सराहना की भावना को लेकर पल्लवित हो। सीसीआरटी के जन्म का श्रेय श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय तथा डॉ. कपिला वात्स्यायन (जो क्रमशः इसकी प्रथम अध्यक्ष व उपाध्यक्ष थीं) की दूर दृष्टि व प्रयासों

तथा आठवें दशक में भारत सरकार के शिक्षा, समाज कल्याण एवं संस्कृति मंत्रालय के सहयोग को जाता है।

सीसीआरटी, भारत सरकार की राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति योजना कार्यान्वित करता है, जिसका लक्ष्य विविध कलात्मक क्षेत्रों में विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करना तथा सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। 10 से 14 वर्ष के आयु समूह वाले शिक्षारत बच्चे या पारंपरिक कलारूपों से जुड़े परिवारों के बच्चे इस राष्ट्रीय सांस्कृतिक छात्रवृत्ति योजना में भाग लेने के पात्र हैं।

विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में युवा कलाकारों को छात्रवृत्ति प्रदान करने की योजना संस्कृति मंत्रालय द्वारा सीसीआरटी को स्थानांतरित की गई है, जिसके तहत भारतीय शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, नाट्य, दृश्य कला, लोक कला आदि क्षेत्रों में 18 से 25 वर्ष की आयु वर्ग के अधिकतम 400 युवा कलाकारों को छात्रवृत्तियाँ (निधि की उपलब्धता के अनुसार) प्रदान की जाती हैं।

सीसीआरटी संस्कृति मंत्रालय की कुछ अन्य नीतियों का भी कार्यान्वयन करता है, जैसे सांस्कृतिक पक्षों पर 400 शोध अध्येताओं को अध्येतावृत्ति प्रदान करना। इनमें 200 कनिष्ठ तथा 200 वरिष्ठ शोध अध्येताओं का चयन किया जाता है। शोध में मुख्य बल संस्कृति के विभिन्न पहलुओं में 'गहन अध्ययन/अनुसंधान' पर दिया जाता है, जिसमें सांस्कृतिक अध्ययनों के नए उभरते क्षेत्र भी शामिल हैं।

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र ने 1985 से सीसीआरटी शिक्षक पुरस्कार की स्थापना की है, जो प्रति वर्ष उन शिक्षकों को दिया जाता है, जिन्होंने शिक्षा व संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य किया हो। पुरस्कार में प्रशस्ति पत्र, प्रतीक चिह्न, अंगवस्त्रम् तथा नकद धनराशि ₹ 25000/–प्रदान की जाती है।

सीसीआरटी ने संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की एक नई पहल के अंतर्गत 'राष्ट्रीय संस्कृति एवं धरोहर प्रबंधन संस्थान' की संकल्पना के अनुसार कला प्रबंधन योजना पर प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करने आरंभ किए हैं।

भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने देश के सांस्कृतिक स्थानिक भूगोल के सर्वेक्षण की महत्त्वाकांक्षी परियोजना – 'भारत का सांस्कृतिक मानचित्रण' – की पहल की है। इस परियोजना का मुख्य केन्द्र विविध क्षेत्रों के कलाकारों के वर्तमान आँकड़ों की तुलना करना व उन्हें उपयोग में लाना है। ये सूची व आँकड़े कहीं से भी लिए जा सकते हैं, चाहे कोई गैर सरकारी सरकारी संस्था हो या संस्कृति के प्रचार-प्रसार में लगी हुई भारत सरकार के अधीन/स्वायत्त संस्थाएँ-जैसे-संगीत नाटक अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, ललित कला अकादमी, साहित्य अकादमी, क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र, ऐंथ्रोपॉलॉजिकल सर्वे ऑव् इण्डिया या अन्य संस्थाएँ जैसे-इंटेक आदि।

इनके अलावा यह अनुभव किया गया कि संस्कृति मंत्रालय को चाहिए कि वह दुर्लभ कलाओं/परंपराओं का सर्वेक्षण भी आरंभ करे ताकि इन पर ध्यान जाए तथा इनको फिर से सहेजा जा सके। इस परियोजना में न केवल आँकड़े व सूची एकत्र होंगे अपितु मंत्रालय उन योजनाओं को भी धन उपलब्ध कराएगा जिन्हें वित्तीय व सामाजिक उन्नति अपेक्षित होगी। सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र सांस्कृतिक कलाकारों के आँकड़े उपलब्ध कराने में सहायता कर रहा है। अप्रैल, 2018 में यह परियोजना इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र (आईजीएनसीए) को स्थानांतरित कर दी गई है।

संस्कृति मंत्रालय द्वारा वाराणसी में 'संस्कृति' परियोजना का नोडल एजेंसी के रूप में सहसंचालन एवं श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय की स्मृति में 'विरासत-कमला देवी' सांस्कृतिक उत्सव का आयोजन सीसीआरटी के महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। इसके लक्ष्य एवं उद्देश्यों के बारे में और अधिक जानकारी हेतु इसकी वेबसाइट www.ccrtindia.gov.in देखी जा सकती है।

ले-आउट व डिज़ाइन : नंदलाल एवं सादिक सईद
सहयोग : सुखबीर सिंह बिष्ट

सीसीआरटी

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
सीआईआई (कन्फेडेरेशन ऑव् इण्डियन इंडस्ट्री)
के सामने, गूगल कार्यालय के करीब
मधापुर से कोण्डापुर मुख्य मार्ग
मधापुर, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश
पिन कोड: 500084
दूरभाष: 040-23117050, 23111918
ई-मेल : rchyd.ccrt@nic.in

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
3बी, अम्बावगढ़, स्वरूप सागर झील के पास
उदयपुर, राजस्थान
पिन कोड: 313001
दूरभाष: 0294-3291577, 2430771, 2430764
ई-मेल : rcud.ccrt@nic.in

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
58, जुरीपार, पंजाबारी रोड
गुवाहाटी, असम
पिन कोड: 781037
दूरभाष: 0361-2330152
ई-मेल : rcgwt.ccrt@nic.in

'शहरों की अनकही दास्ताँ' शृंखला की अन्य पुस्तकें

पुस्तक	*लेखक*
कालपी	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
चंबा	सुदर्शन वशिष्ठ
हमारा सहारनपुर	राजीव उपाध्याय 'यायावर'
चंपावत का सांस्कृतिक वैभव	इंद्र लाल वर्मा
सीकर	ओम प्रकाश चलका
देवास	जीवन सिंह ठाकुर
सूर्यदेहा का सूरत और सूरत के हीरे	विजय सेवक
पिथौरागढ़	मोहन चंद्र जोशी

विमल कुमार

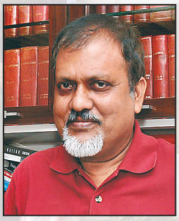

जन्म : 9 दिसंबर, 1960

जन्मस्थान : पटना, बिहार।

गत 35 वर्ष से पत्रकार। विशेष संवाद दाता, हिंदी समाचार एजेंसी, यूनीवार्ता ।

मूलतः कवि। कविता, उपन्यास, कहानी, व्यंग्य और पत्रकारिता की दस पुस्तकें प्रकाशित।

प्रमुख कृतियां: चोरपुराण, चाँद@आसमान.कॉम, सपने में एक औरत से बातचीत, आधी रात का जशन, कॉलगर्ल आदि।

अनेक पुरस्कार।

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)
15ए, सेक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075, भारत
दूरभाष: 91-11-25309300, फैक्स: 91-11-25088637
ई-मेल : dir.ccrt@nic.in, वेबसाइट : www.ccrtindia.gov.in